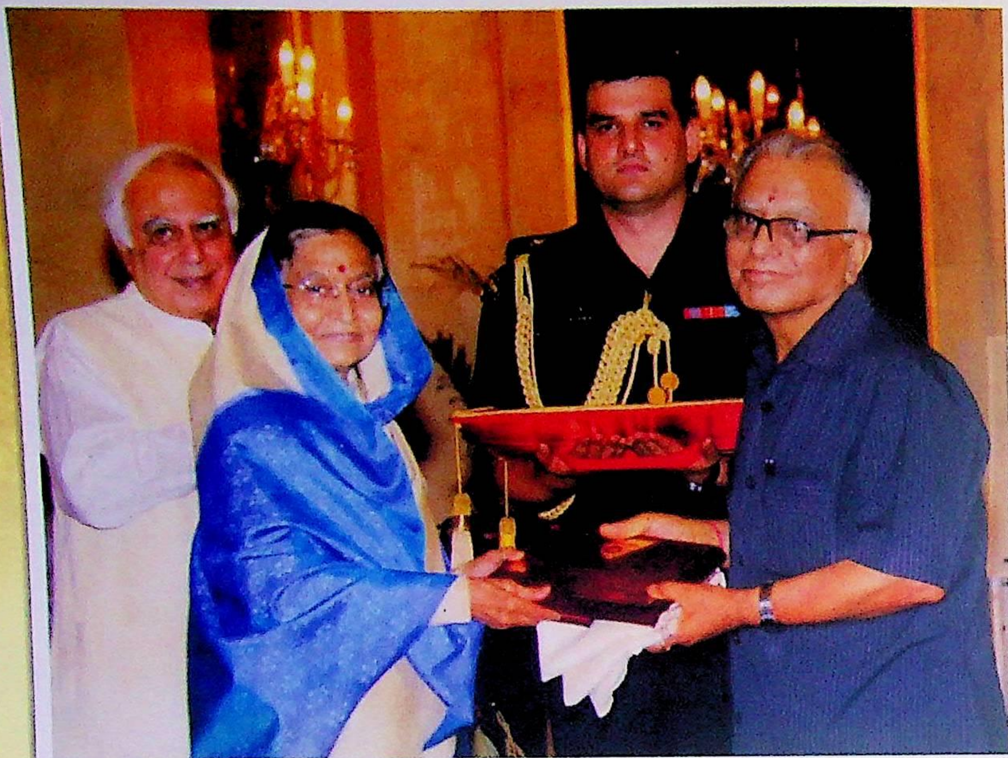
सितंबर 2012

कश्मीर संदेश

म्ये छम
आश पगहॅच...

मुझे कल की
आशा है,
मेरी दुनिया में
कल होगा
उजाला।
— नादिम

हिन्दी कश्मीरी संगम



गंगा शरण सिंह अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सेवी पुरस्कार राष्ट्रपति प्रतिभा देवीसिंह पाटिल से राष्ट्रपति भवन में ग्रहण करते हुए **प्रो. चमन लाल सप्रू**



विश्व मित्र परिवार द्वारा प्रदत्त समाज रत्न सम्मान पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त जी. वी. जी. कृष्णमूर्ति से ग्रहण करते हुए **डॉ. बीना बुदकी**

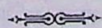


कश्मीर संदेश

साहित्य, संस्कृति एवं भाषा के संरक्षण-संवर्द्धन को समर्पित अनुष्ठान 'हिन्दी कश्मीरी संगम' की त्रैमासिक पत्रिका

प्रवेशांक | सितंबर, 2012 | सहयोग राशि ₹ 125 वार्षिक

इस अंक में



कवर डिज़ाईन एवं फोटो
आशुतोष सप्रू

निवेदन

कश्मीर के बारे में कवि बिल्हण ने कहा है "मैंने कुंकुम (केसर) और कविता सहोदर बनकर केवल शारदा देश (कश्मीर) में पैदा होते देखे हैं अन्यत्र नहीं।" निश्चय ही कश्मीर न केवल धरती का स्वर्ग है, यहां की प्राकृतिक सुषमा के साथ साथ विद्या का प्राचीनतम केन्द्र होने के कारण देश के विभिन्न प्रान्तों के अतिरिक्त सुदूर चीन से भी विद्वानों और ज्ञानार्जन के पिपासुओं के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है।

कृष्ण गंगा के तट पर शारदा–पीठ नामक विश्व प्रसिद्ध शिक्षा का केन्द्र कश्मीर में ही था। उसके अवशेष अब भी उसके अतीत के वैभव की गाथा गाते हैं। कनिष्क के समय हारवन (अर्हतवन) में ही प्रसिद्ध चौथा बौद्ध सम्मेलन हुआ था जहां विश्व–व्यापी बौद्ध मत के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ हुआ और दिशा निर्देश स्थापित हुए।

मध्यकाल में फारसी के अध्ययन का भी कश्मीर प्रमुख केन्द्र रहा है। ईरानी विद्वानों द्वारा चर्चित एवं प्रशंसित बहर–इ–तवील के रचयिता सुप्रसिद्ध कश्मीरी कवयित्री अरनिमाल के पति मुंशी भवानी दास काचरू कश्मीर में ही पैदा हुए थे।

उर्दू के शीर्षस्थ कवि 'सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तान हमारा' के रचयिता डॉ. शेख मुहम्मद इकबाल, पं. ब्रजनारायण चकबस्त, पं. रतन नाथ दर 'सरशार', पं. दयाशंकर 'नसीम' कश्मीर की देन हैं।

यहां के अतीत के वैभव और कश्मीरी भाषा की आद्य कवयित्री लल्लेश्वरी (लल द्यद) से लेकर युगकवि दीनानाथ 'नादिम' तक उच्चकोटि के कवियों की वाणी, यहां की संस्कृति, कला और दर्शन (विश्व प्रसिद्ध शैवदर्शन) से हिन्दी के माध्यम से पूरे देश को अवगत कराना ही हमारी पत्रिका 'कश्मीर सन्देश' का उद्देश्य है। केवल हिन्दी में प्रकाशित होने वाली कश्मीर से सम्बन्धित एक मात्र पत्रिका होने का श्रेय 'कश्मीर सन्देश' को है। आइए इसे स्वयं पढ़िए और दूसरों को पढ़ने की प्रेरणा दें। इसके निरंतर–निर्बाध प्रकाशित होने के लिए आर्थिक सहयोग जुटायें।

जय हिन्द। जय हिन्दी।।

हिन्दी दिवस
14 सितम्बर 2012

कार्यकारी सम्पादक
डॉ. बीना बुदकी

प्रधान सम्पादक
प्रो. चमन लाल सप्रू

❖ **सम्पादकीय कार्यालय** ❖

ए–102, एस.जी.इम्प्रेशन, निकट मेवाड इन्स्टीच्यूट,
सेक्टर–4 बी, वसुन्धरा, गाज़ियाबाद–201012 (एन.सी.आर.,दिल्ली) मो. 09953390488
ई–मेल : beenadeepakbudki@gmail.com

संदेश

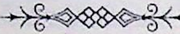




यह जानकर खुशी हुई कि आप लोग कश्मीर से प्रो. चमनलाल सप्रू के प्रधान संपादन में **'कश्मीर संदेश'** पत्रिका का प्रकाशन करने जा रहे हैं। कश्मीर संदेश कश्मीर से प्रकाशित होने वाली एकमात्र त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका है।

कश्मीर हमारे देश का अभिन्न अंग और राष्ट्रीयता का हिमालय है। वहाँ से जो शैवदर्शन का संदेश है वह पूरी दुनिया में पूज्य, अनुकरणीय और उच्चकोटि का विचारसार और जीने की कला है। प्रकृति ने अपने हाथों से कश्मीर का श्रृंगार किया है। कश्मीर संदेश के माध्यम से आप लोग जो हिन्दी के विकास और उत्थान हेतु रचनात्मक साहित्य का सृजन करेंगे वह सारे हिन्दी जगत के लिए प्रेरणाप्रद और यशस्वी कीर्तिकारी होगा। हमारी शुभकामना है कि 'कश्मीर संदेश' निरन्तर प्रकाशित हो और हिन्दी में कश्मीरी जीवन, संस्कृति और सामाजिक परिस्थितियों के साहित्य का सजीव दर्पण बने।

डॉ. रत्नाकर पाण्डेय
पूर्व संसद सदस्य (राज्य सभा)
सदस्य, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

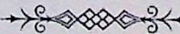




यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि **"हिन्दी कश्मीरी संगम"** कश्मीर की साहित्यिक गरिमा को सम्पूर्ण देश में प्रबुद्ध नागरिकों के बीच हिन्दी कश्मरी में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से ख्याति प्राप्त कश्मीरी भाषी तथा हिन्दी सेवी विद्वान प्रो. चमन लाल सप्रू के प्रधान सम्पादकत्व में **'कश्मीर संदेश'** नामक एक पत्रिका प्रकाशित करने जा रही है। हिन्दी दिवस के अवसर पर 'कश्मीर संदेश' पत्रिका के प्रारम्भिक अंक का प्रकाशन निश्चय ही सराहनीय कार्य है।

पत्रिका के नियमित एवं सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ–

कृष्णानन्द झा
व्यवस्थापक, हिन्दी विद्यापीठ, देवघर, झारखंड





हिन्दी कश्मीरी के बीच समन्वय स्थापित करने हेतु आप–**'कश्मीर–सन्देश'** नाम से हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं। मैं आपके इस राष्ट्रीय महत्व के कार्य की सराहना करती हूं। कृपया मेरी तथा समपूर्ण कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति परिवार की शुभ कामनाएं स्वीकार करें।

यह जानकार हार्दिक प्रसन्नता हुई मेरे अनुजवत् भाई प्रो. चमन लाल सप्रू का आपको मार्ग दर्शन प्राप्त है। सप्रू जी कश्मीर से कन्याकुमारी तक हिन्दी के लिए दौड़ लगाने वाले भाई सदा ही हमें प्रेरणा देते रहे हैं।

बी. एस. शान्ता बाई
प्रधान सचिव,
कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बैंगलूर



'कश्मीर सन्देश' कश्मीरी हिन्दी के बीच सकारात्मक संवाद बनकर राष्ट्रीय एकता को सम्पुष्ट करेगा। पत्रिका के प्रवेशांक हेतु मेरी शुभकामनाएं।

डॉ. राजेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

सम्पादक, विश्व हिन्दी गौरव ग्रंथ, ग्वालियर



यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि कश्मीर से जुड़ी एक मात्र हिन्दी पत्रिका **"कश्मीर सन्देश"** नाम से हिन्दी दिवस पर प्रकाशित हो रही है। बड़ी खुशी की बात है कि इसके प्रधान सम्पादक प्रो. चमन लाल सप्रू हैं। कश्मीर में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के अभियान में उनका स्थान सर्वोपरि है। पत्रिका का प्रकाशन एक ऐतिहासिक काम है। इसके माध्यम से हिन्दी जगत को कश्मीर के साहित्य, संस्कृति और कला के बारे में ज्ञान वर्द्धन होगा। मैं पत्रिका के अबाध गति से प्रकाशित होने की कामना करता हूँ।

डॉ. निज़ामुद्दीन,

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

इस्लामिया कॉलिज, श्रीनगर (कश्मीर)



हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि साहित्य – संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन को समर्पित तथा हिन्दी कश्मीरी समन्वय के लिए कार्यरत संस्था **'हिन्दी कश्मीरी संगम'** के तत्वावधान में **'कश्मीर सन्देश'** नामक पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है। प्रकाश्य–पत्रिका हेतु हमारी शुभकामनाएं। हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है। एक सागर के रूप में यह विविध भारतीय भाषा–रूपी नदियों का मिलन स्थल है। सभी क्षेत्रीय और राज्यभाषाओं की तरह कश्मीरी का भी अपना महत्व और वैषिष्ट्य है। जननी और जन्मभूमि की तरह हमारी मातृभाषा भी आदरणीय और पूज्यनीय है। इसमें उस प्रान्त की मिट्टी की खुशबू तथा वहां की संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। 'विविधता में एकता' वाले भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी देश को एक सूत्रता प्रदान करती है। अतः प्रकाशित पत्रिका हिन्दी एवं कश्मीरी भाषियों के बीच संपर्क सेतु का कार्य करेगी, ऐसी आशा है। अनन्त शुभकामनाओं के साथ

बिन्देश्वर पाठक

संस्थापक, सुलभ इंटरनेशनल सोशल सर्विस आर्गनाईजेशन



प्रिय बीना, आशीष। तुम निश्चय ही एक उत्साह वधर्क, जरूरी और महत्वपूर्ण कार्य को अंजाम देने जा रही हो। जिसे बहुत पहले सोचा जाना चाहिए था। **'कश्मीर सन्देश'** के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकारो। पत्रिकाओं की भूमिका परस्पर वैचारिक संवाद सेतु निर्मित करने की पहल भर ही नहीं होती, संस्कृति और सोच के विनिमय के लिए वह एक ऐसा संवेदनपूर्ण साझे मंच को अपने ईंट गारे से पुखता करती हैं, जहां खड़े होकर अभिव्यक्ति अपनी सहमति–असहमति के साथ – सामाजिक उन्मेष के नयी दिशायें अन्वेशित करती है और रोशनी की नयी चौखटों से उन्हें आलोकित करने का सद्प्रयास करती हैं। रास्ता निर्विवाद नहीं लेकिन चुनौतियां सहने का माद्दा न हो तो कोई पत्रिका निकालने का जोखिम उठाये ही क्यों? संकल्प दृढ़ हो तो संसाधन जुटते चलते हैं। बीना, तुम्हें पुनः ढ़ेरों–ढ़ेरों शुभकामनाएं।

चित्रा मुद्गल

मयूर विहार, दिल्ली



'हिन्दी कश्मीरी संगम' के तत्वावधान में **'कश्मीर सन्देश'** नाम से पत्रिका प्रकाशित करने के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं। इसके द्वारा कश्मीरी भाषा के लिए नागरी लिपि का वैकल्पिक लिपि के रूप में प्रयोग भी होगा जिससे आचार्य बिनोबा भावे का संकल्प "नागरी ही नहीं नागरी भी" पूरा होगा।

आपके प्रधान सम्पादक प्रो. चमन लाल सप्रू और सम्पादक महोदया आप भी स्वयं नागरी लिपि परिषद के आजीवन सदस्य हैं। आप भारत जैसे बहुभाषी देश में नागरी लिपि के महत्त्व को समझती हें। पुनः शुभकामनाओं के साथ,

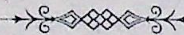
डॉ. परमानन्द पांचाल
सचिव, नागरी लिपि परिषद, राजघाट, दिल्ली





मुझे यह जानकर प्रसन्नत हुई कि हिंदी कश्मीरी संग द्वारा 'कश्मीर सन्देश' का प्रकाशन प्रारम्भ किया जा रहा है। इस प्रयास से न केवल हिन्दी कश्मीरी भाषा के बीच ही सेतु स्थापित होगा नहीं अपितु कश्मीर के साथ भारत के पुरातन और आत्मीय रिश्तों को भी ताज़गी मिलती रहेगी। कश्मीरी भाषा में अनेक रचनाकार प्रभावी साहित्य का सृजन करते रहे है और आज भी कर रहें है। उनका परिचय व्यापक भारतीय समाज के साथ कश्मीर सन्देश के द्वारा होगा।

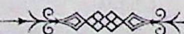
कैलाश चन्द्र पंत
कार्यवाहक प्रधान मंत्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
एवं सचिव, हिन्दी भवन, भोपाल





मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नत हुई कि **'हिन्दी कश्मीरी संगम'** द्वारा **'कश्मीर सन्देश'** नाम से त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही। 'हिन्दी दिवस' के अवसर पर श्रीनगर (कश्मीर) में इसका लोकार्पण होगा। मुझे विश्वास है पत्रिका द्वारा कश्मीरी साहित्य और संस्कृति के बारे में पाठकों को व्यापक जानकारी मिलेगी। मेरी शुभकामनाएं

–डॉ. गोविन्द व्यस
मंत्री, हिन्दी भवन, दिल्ली





'कश्मीर सन्देश' के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं। आपके द्वारा कश्मीरी भाषा और साहित्य, संस्कृति से सम्बन्धित एकमात्र हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन स्वागत योग्य है।

डॉ. महेश दिवाकर
अध्यक्ष, अ. भा. साहित्य कला परिषद, मुरादाबाद

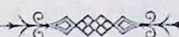


मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि **'हिन्दी कश्मीरी संगम'** के तत्वावधान में कश्मीर की साहित्यिक प्रतिभा से पूरे देश के प्रबुद्ध समाज को अवगत कराने और हिन्दी, कश्मीरी में समन्वय–हेतु स्थापित करने के लिए **'कश्मीर संदेश'** पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा हैं इसके प्रधान संपादक प्रो. चमनलाल सप्रू एक कुशल, अनुभवी और सफल संपादक रहे हैं। निश्चय ही इनके मार्ग दर्शन में 'कश्मीर संदेश' पत्रिका अपने उद्देशयों की पूर्ति में सफल रहेगी।

इस पत्रिका के माध्यम से कश्मीर के नये रचनाकारों को अपनी अभिव्यक्ति का एक सशक्त मंच प्राप्त होगा। पत्रकारिता निश्चय ही भावाभिव्यक्ति को धारदार बनाती है और साहित्य के लोकतंत्रीयकरण का सबब बनती है। आशा है कश्मीर संदेश नवोदित रचनाकारों को प्रकाश में लाकर साहित्याकाश में स्थापित कर अपनी सकारात्मक भूमिका निभाने में सफल रहेगी।

डॉ. हरि सिंह पाल

आकाश वाणी भवन, नई दिल्ली





यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि **'हिन्दी कश्मीरी संगम'** के तत्त्वावधान में कश्मीर की साहित्यिक प्रतिभा से सम्पूर्ण देश के प्रबुद्ध–वर्ग को अवगत कराने का उद्देश्य लेकर **'कश्मीर सन्देश'** नाम से एक पत्रिका प्रकाशित की जा रही है, जिसके प्रवेशांक का लोकार्पण हिन्दी दिवस (14 सितम्बर) को श्रीनगर में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय और आपके तत्त्वावधान में आयोजित हिन्दीतर भाषी नवलेखक शिविर के अवसर पर होगा।

कश्मीर भारत का मुकुटमणि ही नही, हमारी सनातन संस्कृति का चिरन्तन ध्वजवाहक भी रहा है। वाङ्मय के क्षेत्र को शैवागमों के अतिरिक्त अभिनवगुप्त, महाकवि कालिदास, कल्हण, जोनराज जैसे महामनीषियों की लेखनी से निःसृत शब्द–ब्रह्म की साधना के स्वरों ने जो श्री, समृद्धि सम्पन्नता दी, उसने न केवल विद्वत् समाज को; वरन् लोक–मानस को भी अभिभूत कर उसे धन्यता प्रदान की है। कश्मीर के विषय में जितना भी लिखा जाये, लेख्नी की क्षमता के परे ही रहेगा।

'हिन्दी कश्मीरी संगम' के इस श्रेष्ठ एवम् स्तुत्य प्रयत्न के शुभ अवसर पर 'राष्ट्रधर्म' की हार्दिक शुभकामना स्वीकार करें। विश्वास है, प्रो. चमनलाल सप्रू जेसे राष्ट्रसेवी मनीषी की लेखनी के आशीर्वाद से यह प्रयत्न सफल एवम् दीर्घजीवी होगा। शुभानः सन्तु पन्थानः।

आनन्द मिश्र 'अभय'

– सम्पादक "राष्ट्रधर्म", लखनऊ





कश्मीरी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पक्षों के बारे में कश्मीर से बाहर अन्य भारतीय प्रान्तों में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। कश्मीर की वैभवपूर्ण लोक कला, संत सूफी परम्परा, गौरवशाली इतिहास तथा प्रतिभा की जानकारी हिन्दी के माध्यम से सब तक पहुँचना समय की मांग है। साथ ही कश्मीरी और हिन्दी के भाषा साहित्य में समन्वय सूत्र स्थापित करने की भी अत्यधिक आवश्यकता हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप की संस्था **'हिन्दी कश्मीरी संगम'** शीघ्र ही **'कश्मीर सन्देश'** नाम से पत्रिका प्रकाशित कर रही हैं जिसका सम्पादन आप करेंगी और प्रधान संपादक वरिष्ठ विद्वान प्रो. चमन लाल सप्रू होंगे। मुझे पूरी आशा है आप अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होंगे। पत्रिका की सफलता के लिए शुभकामनायें।

डॉ. ओमकार कौल

पूर्व निदेशक, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर

एवं सम्पादक 'वाख'



यह जानकर हार्दिक प्रसन्नत हुई कि आप **'कश्मीर सन्देश'** नाम से हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ कर रहे हैं। कश्मीर से जुड़ी इस पत्रिका के लिए मैं अपनी तरफ से और आल इंडिया कश्मीरी समाज की तरफ से शुभकामनाएं भेजता हूँ।

मोती कौल
अध्यक्ष, आल इंडिया कश्मीरी समाज,
डी. 90, सरोजनी नगर, नई दिल्ली





'कश्मीर सन्देश' पत्रिका के प्रवेशांक के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार करें। कश्मीर से जुड़ी एक मात्र हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन एक अभिनन्दनीय प्रयास है। इसको निरन्तर प्रकाशित होने के लिए प्रभु से प्रार्थना के साथ–

ए.एन. कौल साहिब
मुख्य सम्पादक – नाद
डी. 90, सरोजनी नगर, नई दिल्ली





मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता हो रही है कि कश्मीर की भाषा, साहित्य और संस्कृति के वैभव से हिन्दी जगत को उत्कृष्ट रचनायें प्रस्तुत करने वाली एक मात्र विशुद्ध हिन्दी पत्रिका के प्रवेशांक का हिन्दी दिवस पर श्रीनगर (कश्मीर) से लोकार्पण हो रहा है। पत्रिका के प्रधान सम्पादक मेरे आदरणीय भाई प्रोफेसर चमन लाल सप्रू और प्रिय बहन डॉ. बीना बुदकी के लिए दिल की गहराईयों से शुभकामनाएं प्रेषित कर रही हूँ।

डॉ. फूल चन्द्रा
"वितस्ता" चिकित्सालय, पटियाला (पंजाब)





मुझे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि **'हिन्दी कश्मीरी संगम'** संस्था हिंदी और कश्मीरी भाषाओं में समन्वय स्थापित करने हेतु **'कश्मीरी सन्देश'** नाम से एक पत्रिका प्रकाशित कर रही है।, मैं स्वयं तथा सूर्या संस्थान सदैव ही समस्त भारतीय भाषाओं में आपसी सदभाव एवं समन्वय बनाए रखने के पक्षधर है, आशा है आपका यह प्रयास न केवल हिंदी कश्मीरी, बल्कि हिंदी तथा अन्य भारतय भाषाओं में भी समन्वय स्थापित करने में सहयक होगा। मैं 'हिंदी कश्मीरी संगम' के उज्जवल भविष्य की कामनाकरता हूँ तथा पत्रिका के प्रकाशन के लिये शुभकामनाएँ प्रषित करता हूँ। वरिष्ठ हिन्दी सेवी प्रो. चमनलाल सप्रू का मार्ग दर्शन आपके लिए वरदान है।

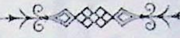
देवेन्द्र कुमार मित्तल,
न्यास मंत्री, सूर्या संस्थान, नोएडा



प्रो. चमन लाल सप्रू के प्रधान सम्पादकत्त्व में आप कश्मीर की संस्कृति, कला और सहित्य से जुड़ी हुई एक मात्र विशुद्ध हिन्दी पत्रिका का शुभारम्भ कर रहे हैं। निःसन्देह यह बड़ी खुशी की बात है। सप्रू जी और कश्मीर में राष्ट्रभाषा का प्रचार प्रसार एक दूसरे के पर्याय हैं। मुझे विश्वास है **'कश्मीर सन्देश'** सभी हिन्दी पाठकों में एक लोक प्रिय पत्रिका सिद्ध होगी और यह कश्मीरी एवं हिन्दी के बीच समन्वय सेतु बनकर राष्ट्रीय महत्व की भूमिका निभायेगी।

पृथ्वीनाथ कौल

पूर्व प्रिंसिपल, डी.ए.वी., कॉलिज अम्बाला





मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि **'हिन्दी कश्मीरी संगम'** द्वारा **'कश्मीर सन्देश'** पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। हिन्दी कश्मीरी संगम एक प्रतिष्ठित संस्था है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि कश्मीर सन्देश पत्रिका में ऐसे लेखों का समावेश होगा जो पाठकों को कश्मीर के साहित्यिक सांस्कृतिक तथा अन्य पहलुओं पर रोचक सामग्री प्रस्तुत करेगी। कश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग माना गया है, यहां की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की अपनी विशिष्ट पहचान रही है। हिन्दी कश्मीरी संगम द्वारा संचालित सांस्कृतिक व सामाजिक सरोकारों से सम्बन्धित गतिविधियां समाज में आपसी एकता एवं सदभाव को बढ़ावा देने में सहायक होगी, ऐसी आशा है।

पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु अपनी और लखनऊ वासी समस्त कश्मीरी समाज की शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

जवाहरलाल रैना

अध्यक्ष, कश्मीरी एसोसिएशन ट्रस्ट, लखनऊ

लल वाख

(लल्लेश्वरी की वाणी)



डा. शशिशेखर तोषखानी

मूल कश्मीरी

आयस ति स्योदुय तॅ गछ़ॅ ति स्योदुय,
स्येदिस होल कर्यम क्याह ?
बॅ तस ऑसस आगरय व्यदॅय,
व्यदिस तुॅ वेन्दिस कर्यम क्याह।।

पद्यानुवाद

सजनि! मैं प्रिय की चिर पहचानी
प्रियतम की नगरी की मैंने सीधी गैल गही
डिगा सकेगा मुझ सरला को कोई कुटिल कहां
मैं उनकी अपनी युग–युग से प्यारी सदा रही
बाधा कौन? कि मैंने प्रिय की सरल राह गही
सजनि! मैं प्रिय की चिर पहचानी।।

गगन चॅ़य, भूतल चॅ़य,
चॅ़य द्यन, पवन तॅ राथ।
अर्घ, चन्दुन, पोश, पोन्य चॅ़य,
चॅ़य सकल तय लॉग्यज़िय क्याह ?

तू ही पवन, गगन, भूतल तू
तू ही दिन, तू रात
तू ही अर्घ–पुष्प–जल–चंदन सब कुछ तू ही तात
व्यर्थ आरति, व्यर्थ अर्चना की यह भ्रममय बात!
व्यर्थ यह पूजा के सब साज!
देव! फिर पूजा केसी आज

डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय

भक्तिरस के मूर्धन्य कश्मीरी कवि
संत कृष्ण जू राज़दान



कवि क्रोन्तदर्शी ऋषियों की तरह कभी कभी ही अवतीर्ण होते हैं और उनमें भी भक्त कवि और भी दुर्लभ होते हैं। नाम मात्र के कवि और भक्तों की संख्या विरल नहीं होती; किन्तु सच्चे और सहज भाव से सृजन करने वाले सर्वत्र तथा सर्वदा नहीं दिखाई देते। कृष्ण जू महाराज कश्मीर के होते हुए भी भक्त और कवि रूप में भारतीय प्रमुख भक्ति–धारा से सम्बद्ध कवि हैं। उन पर भारतीय सन्त परम्परा का भी अक्षुण्ण प्रभाव दिखाई देता है। विरोधाभासी (उलटबाँसी रूप) वर्णन–पद्धति भी कृष्ण जू महाराज की कविता में विद्यमान दिखाई देती हैं

मुझसे वह करवाइये कुछ भी करे न पड़ना ऐसा मुझे पढ़ाइये जिसे पड़े ना पढ़ना

वह दे दुहराने मुझे जो न पड़े दुहराना।
कहे स्मरण करने वही, जो न याद कुछ करना।।
घंटा बजाये बिन बजे शंखोम फूँके बिनु करे।
संगीत–स्वर अजपा जपी गाये बिना ही सुन पड़े।।

ऐसे स्थाल वहीं देखने को मिलते हैं जहाँ वे भावावेश की स्थिति को पार कर जाते है। अधिकांशतः श्रीकृष्ण जू प्रपत्तिमूलक भक्ति के कवि है। भक्ति के लिए शर्त होती है कि भक्त के प्रभु सर्व–समर्थ तथा सर्वगुणोपेत हों और भक्त अपने आपको उनके समक्ष सर्वथा अकिंचन माने।

शिव–स्तुति करते हुए भक्त कृष्ण जू महाराज कहते है कि वे साधुओं के साधु हैं, योगियों के योगी हैं, ज्ञनियों के ज्ञान हैं पूर्ण पुरुष हैं, नाद–बिन्दु स्वरूप हैं, अच्युत हैं और उनकी कृपा से ही चेतना का राज्य चलता है। :–

तेरी कृपा से चित्त की चेतन अच्युत! बने।
जिस विना सारी क्रिया जगत् की कुण्ठित बने।।

इस तरह प्रभु को श्रेष्ठ मानते हुए वे अपने को तुच्छतितुच्छ मानते हें।

भक्ति के लिए आराध्य और आराधक में ऐसा भाव आवश्यक है :–

जन्मना ब्राह्मण भले ही दूर ब्रह्म–विचार से।
ध्यान में लाओं न राक्षस हूँ कि मैं व्यवहार से।।

तभी ऐसी उत्कट भावना हृदय में जगती है कि जिससे भक्त प्रभु को अपनी निधि मानने लगता है और प्रभु के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर देना चाहता हैं

चरण–कमल धर धीरे धीरे काश!
कभी तुम आ जाओ
मैं सर्वस्व लुटा दूँगा उन चरणों पर खुश होकर।
हे अमरानाथ! हे नीलकण्ठ! मैं तेरे शुभ चरणों पर
करूँ अर्चना खुशी खुशी से अपना शीश चढ़ाकर।।

कृष्ण जू महाराज भक्ति के आवेश में सन्त कबीर की तरह मदमस्त दिखाई देते है। मस्ती में प्रायः भाषा के करारे टूटने लग जाते है। किन्तु कृष्ण जू की भाषा तब भी प्रांजल एवं सारगर्भित रहती है। यह इसलिए कि वे कबीर के असदृश पढ़े लिखे व्यक्ति थे। उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :–

दूर चिन्ता हो गई औ' चेतना–पुष्पित लता पर।
शक्ति रूपी ओस–जल की लो हो रही वर्षा सुघाड़।
जगने दे आत्मा को अरे उसके अन्दर मनुजवर।
जो अनात्मक तत्व की करदे विदाई शीर्घतर।
अपने हित में माँगू मस्ती।
जो न भाँग पीकर–सी सस्ती।।
होश गँवाकर बके अनर्गल।
घूमें जिससे बनकर पागल।।

कृष्ण जू महाराज भगवद्–भक्त हैं। रामकृष्णदि–अवतारों की वे अवहेलना तो नहीं करते हैं; किन्तु शिव उनके परम आराध्य हैं। वे नारायण की स्तुति करते हुए कहते हैं:

राम! ढहा दो ममता लंका।
बाजे प्रेम–विभीषण डंका।

जो अभेद की दृष्टि घुमाऊँ। कृष्ण राम शिव एक बताऊँ।।

रास–लीला का भी उन्होंने बड़ा मार्मिक वर्णन किया है; किन्तु अधिकांशतः वे शिव–स्वरूप का ही स्तवन करते हैं। वे शिव को साधुओं के साधु तथा योगियों के योग रूप में देखते हैं। नीलकण्ठ अमरनाथ को वे अपना शीश अर्पित कर देना चाहते हैं :–

हे अमरनाथ! हे नीलकण्ठ! मैं तेरे शुभ चरणों पर
करूँ अर्चना खुशी खुशी से अपना शीश चढ़ाकर।
करू कामना बना रहे भक्त कृष्ण पर दया–भाव
मुझमें तेरी चाह जगी और जगा विश्वास अमर।।

'शम्भु महाराज की आराधना' में शिव को अपने आँख की पुतली बना लेना चाहते हैं। शिव–प्रतिमा पर न्यौछवर होने की उनकी बलवती इच्छा प्रकट होती है। 'शिव शरणम्' होना उनका लक्ष्य है:

शम्भो! लेकर आश यहाँ आया तेरे पास।
अनुकम्पा मुझ पर करो समझ मुझे निज दास।।

'पोशिपूज़ा' में वे सर्वथा भाव–मुग्ध होकर शिव की शोभा का वर्णन करते अघाते नहीं। फलतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कश्मीर के शैवागम दर्शन से प्रभावित होकर वे शैव भक्त बने दृष्टिगत होते हैं।

कला पक्ष

श्री कृष्ण जू भक्ति–गीतों मे केवल कोरी भक्ति का निदर्शन नहीं करते हैं, अपितु सूर और तुलसी की तरह उनके प्रत्येक पद काव्य का एक उत्कृष्ट नमूना है। सर्वत्र भक्ति–रस या भक्ति–भाव कला की अनूठी विशेषताओं से उद्भुत होता हैं ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्तियों के अद्भूत रूपों को उपस्थित करने में वे सफल हुए हैं। सांग रूपक उनका प्रिय अलंकार रहा है। उदाहरणार्थ नीचे कुछ पंक्तियाँ जाती है :–

विषय–त्याग का माघ–व्रत सत्संगति उपवास।
तथा बना ले शुद्ध मन आत्मतीर्थ कर वास।
कटवा माया मोह के लम्बे–लम्बे बाल।
बस्ती में ऐसे बिता निज वनवासी काल।
मोह–दारु में ज्ञान–अग्नि दें।
भक्ति रूप लपटें धधका दें।
विस्फोटक अज्ञान हमारा।
तब उनसे ही जला, मिटा दें।।

रूपकातिशयोक्ति के बड़े मनोरम दृश्य श्री कृष्ण जू ने खींचे हैं :–

सांख्य–योग–वसन्त मेरी, वाटिका में बस चला है।
चटकती कलियाँ रसीली, पत्र–दल हँसने लगा है।
यहाँ सांख्य–योग–वसन्त में रूपक है।

'वाटिका', 'चटकती कलियाँ' तथा 'पत्र–दल' शब्दों में रूपकातिशयोक्ति है।

शम्भुनाथ! तेरे आते ही घर के सूखे सोतों से।
फिर से बहने लग जाये तब पानी उमड़ उमड़ कर।

यहाँ प्रयोजनवती लक्षणशक्ति तथा यमकातिशयोक्ति का चमत्कार दर्शनीय है। परम्परित रूपक के ये उदाहरण भी उल्लेखनीय है :–

राम ढहा दे मेरी लंका। बाजे प्रेम विभीषण डंका।
इन्द्रिय रूपी फूल खिले मन के उत्तम बाग।
तुम्हें चढ़ाऊँ पूजता लेकर त्याग–विराग।।

श्री कृष्ण जू महाराज काव्य–बिम्बों को उपस्थित करने में भी कुशलता का परिचय देते हैं। चक्की पर आकर लोग अनाज को पीस कर खाने के योग्य बना लेते है। भगवान् नारायण से प्रार्थना करते हुए वे कहते है कि वे उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। कब उनकी ललक पूरी होने की बारी आयेगी अर्थात् भगवत् कृपा प्राप्त कर कब संसार से मुक्ति मिलेगी।

लोम–फसल ले चक्की आया।
बारी मिलते हो मन भाया।

भव–सागर तरने का मेरा है संकल्प, भरोसा तेरा।।

यहाँ दृष्टान्त–अलंकार–चित्रित बिम्ब दर्शनीय है।

हाथ थाम कर पार उतारो।
परस छुआ लौह उद्धारा।।

इसमें कवि प्रभु की ऐसी कृपा चाहता है कि जिससे 'जलती आग फुलवारी' बन जाय।

संक्षेप में कहा जाये तो श्री कृष्ण जू महराज का कथ्य तो भक्ति तथा वैराग्य है; किन्तु उनका शिल्प गूढ एवं मनोरम भावों को प्रकट करने की क्षमता रखता है। जिससे उनकी रचनायें काव्य–साहित्य का उत्कृष्ट नमूना बनी दृष्टिगत होती है।

मैंने उन्हें भक्ति–वैराग्य का कवि कहा है उस विषय को थोड़ा और स्पष्ट कर दूँ कि वे भक्ति रस के मूर्धन्य कश्मीरी कवि है। भावों को निवेदित करने का उनका कौशल सर्वथा स्तुत्य है। वैराग्य के लिए वे स्वरूपतः संसार–त्याग की बात नहीं क़रते हैं, अपितु मन से विरक्त होकर दुनियाई जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देते दृष्टिगत होते हैं, यथा–

सज्जन बनकर हे मनुज! बना चित्त कैलास।
धरती पर रहकर करो जैसे तुम वनवास।।

इसी उक्ति के समर्थन में कवि उदाहरण देता है :–

राम खेल श्रीकृष्ण ने रखा गोपियों संग।
रहे ब्रह्मचारी सदा केसा था वह ढंग!।।

तब कवि निष्कर्ष निकालते हुए निर्णय देता है :–

'राख त्याग की उर रमा' सजा राख से देह।
शुक्र से बोले व्यास यही, मानो बन–सा गेह।।

निष्कर्ष यह है कि श्री कृष्ण जू महाराज ने अपने कथ्य अर्थात् नारायण, कृष्ण–राम विशेषतः शिव की भक्ति में बड़े उत्कृष्ट भाव व्यक्त किये है और उन्हें प्रकट करने की जो शैली अपनाई है वह अद्‌भुत हैं अपने पूर्वापर समय के भक्त कवियों की श्रेणी में उनका नाम स्वर्णाक्षरों मे लिखा जाना चाहिए। ✠

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल



कश्मीर का संस्कृत साहित्य को योगदान

प्रख्यात संस्कृत विद्वान पंडित जानकी नाथ कौल 'कमल' की पुत्री विदुषी लेखिका इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली में कला कोष की संपादक है। प्रस्तुत लेख इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र में ही आयोजित पुरालिपि शास्त्र और पाण्डुलिपि विज्ञान पर हुई कार्यशाला में उनके द्वारा दिए गए व्याख्यान पर आधारित है। **—सम्पादक**

प्रस्तुत विषय पर समय—समय पर विद्वान चर्चा करते रहे हैं और यहा के उपलब्ध एवं अनुपलब्ध साहित्य पर पर्याप्त प्रकाश भी डालते रहे हैं। इन विद्वानों में सर्वश्री कान्तिचन्द्र पाण्डेय, एस.के.डे., पी.वी. काणे, एस. सी. बैनर्जी, के.एस. नागराजन इत्यादि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रोफेसर वेद कुमारी घई ने 1987 में कश्मीर के प्रकाशित काव्यों तथा काव्य शास्त्र संबंधी साहित्य की विस्तृत चर्चा अपनी पुस्तक कश्मीर का संस्कृत साहित्य को योगदान में की है। इस विषय पर आगे चर्चा करने से पहले मैं ऐसी कई महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक समझती हूँ जिन्हें हमें संस्कृत साहित्य को जानने समझने के लिए ध्यान में रखना चाहिए। सबसे पहली बात यह कि संस्कृत साहित्य से तात्पर्य केवल साहित्यिक रचनाओं से ही नहीं समझना चाहिए, जिसमें केवल भाषा को प्रकट करने की विभिन्न कुशलताओं को महत्व दिया जाता है। बल्कि साहित्य वह निधि है जिसमें हमें जीवन से संबंधित किसी भी विषय पर सामग्री मिल सकती है। इमसें भाषा के साथ साथ जीवन से संबंधित कोई भी विषय जैसे विान, कला, ज्योतिष, गणित, अर्थशास्त्र, इतिहास इत्यादि आते है। भाषा तो केवल एक माध्यम है— जिस प्रकार लिपि भाषा का एक माध्यम होती है लिखित रूप में।

दूसरी बात यह कि भारतीय संस्कृति की जब हम बात करते हैं तो इस संदर्भ में हमें भारतवर्ष के उस प्राचीन विशाल भूमंडल को ध्यान में रखना पड़ता है जो दूर दूर तक फैला हुआ था इसी प्रकार जब हम कश्मीर की बात करेंगे तो यहां कश्मीर से तात्पर्य आज के सीमित क्षेत्र से न होकर प्राचीन कश्मीर से है जो गांधार (वर्तमान कंधार) तक फैला हुआ था। प्राचीन कश्मीर में गिलगित, हुंज़ा, मुज्ज़फराबाद और कृष्ण गंगा का क्षेत्र भी आता था जो आजकल पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में है। कृष्णगंगा को आजकल पाकिस्तान में नीलम के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र में कभी विद्यास्वरूपिनी शारदा देवी का एक भव्य पंदिर स्थित था। यही एक विख्यात विश्वविद्यालय की भी स्थापना की गई थी। जहां दूर दूर से विद्यार्थी विद्यार्जन के लिए आया करते थे। विद्वानों का आपस में शास्त्रार्थ होता था। कहा जाता है कि शास्त्रार्थ में सफलता पाने के बाद ही आगंतुक विद्वानों को विश्वविद्यालय में आने की अनुमति दी जाती थी। यह भी कहा जाता है दक्षिण भारत से आद्य शंकराचार्य ही पहले विद्वान थे जो शास्त्रार्थ में सफल हो पाए और उन्हें विश्वविद्यालय में और शारदा देवी के मंदिर में जहां सर्वज्ञपीठ की स्थापना की गई थी, वहां आने की अनुमति दी गई थी। इसके बाद 11वीं, 12वीं सदी ई. (1017—1137) के बीच दक्षिण से रामानुजाचार्य ब्रह्मसूत्रों पर अपने द्वारा लिखे भाष्य को लेकर यहा आये और यहां के विद्वानों से अपने भाष्य पर स्वीकृति पाने के बाद ही उन्होंने इस भाष्य का नाम 'श्रीभाष्य' रख दिया। इन सब बातों का ज्ञान हमें लोक धारणाओं के साथ साथ कहीं न कहीं इसका उल्लेख ाने से होता हैं लिख्ति प्रमाण बहुत ही महत्वपूर्ण प्रमाण होते हैं—इसी संदर्भ में पाण्डुलिपियों का महत्व भी विशेष रूप से बढ़ जाता है।

उदाहरणार्थ यदि हम आज के कश्मीर को देखें तो शायद ही समझ पायें कि कश्मीर का प्राचीन इतिहास बहुत समृद्ध था। परंतु लिखित सामग्री जो भारत एवं भारत से बाहर पाण्डुलिपि के रूप में सुरक्षित रह पाई है

उसी से हम अपने पूर्व इतिहास को समझने में समर्थ हो पाते है। कश्मीर में रचित संस्कृत साहित्य का बहुत सा भाग लुप्त हो चुका है। यदि भारत से बाहर मध्य एशिया और चीन देशों में यह लिखित सामग्री सुरक्षित न होती तो शायद ही आज हमें मालूम पड़ता कि कश्मीर कभी बौद्धमत का भी विशेष केन्द्र रहा था। एक समय ऐसा भी था जब विद्वानों में ऐसी धारणा थी कि बौद्ध साहित्य केवल पाली भाषा में ही लिखा गया है। परंतु मध्य एशिया और नेपाल से प्राप्त पाण्डुलिपियों ने इस धारणा को बदल डाला और साथ ही इस बात को भी उजागर किया कि बौद्ध संस्कृत साहित्य की स्थापना में कश्मीर का विशेष योगदान रहा है। त्रिपिटक पर संस्कृत भाषा में भाष्य लिखने के कारण ही यहां के बौद्ध विद्वानों को वैभाषिक नाम से जाना जाने लगा। बौद्ध दर्शन की स्थापना में भी कश्मीर का विशेष योगदान रहा है यहा के सर्वास्तिवादी बौद्धों ने पूरे उत्तर भारत में कश्मीर को बौद्ध दर्शन का केन्द्र बनाया। बाद में सर्वास्तिवाद को पूरे भारत में सम्मति मिली। सर्वास्तिवाद के माध्यम से ही हीनयान का प्रचार मध्य एशिया एवं चीन तक फैला। कई शिलालेखों से इस ज्ञान का पुष्टि होती है कि सर्वास्तिवाद मथुरा, पेशावर, और बलोचिस्तान में दूसरी सदी ई. से लेकर चौथी सदी ई. तक वर्तमान था (Shinkot Inscription). सर्वास्तिवाद के अतिरिक्त बौद्धों के अन्य मत भी कश्मीर में प्रचलित थे। इसका संकेत हमें ह्यूनसांग ने अपने यात्रा विवरण में दिया है। ह्यूनसांग ने लिखा है कि तत्वसंग्रेह नामक ग्रंथ कश्मीर के बौद्ध आचार्य बोधित के द्वारा महासंधिकों के मतानुसार लिखा गया था। इस आचार्य ने यह ग्रंथ कश्मीर में सिथत महासंधिकों के विहार में ही रखा था। इसी प्रकार सत्यमिद्धिशास्त्र यतत्वसिद्धिशास्त्र एक अन्य महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथ है जो चीनी अनुवाद में ही सुरक्षित है। इस ग्रंथ की रखना कश्मीर के विख्यात सर्वस्तिवाद बौद्ध आचार्य हरिवर्मन ने 253 ई. में की थी। कहा जाता है कि आचार्य हरिवर्मन ने इस ग्रंथ की रखना बौद्ध धर्म के उस समय तक प्रचलित सभी मतों को दृष्टि में रखकर की थी। इस ग्रंथ की मूल प्रति तो उपलब्ध नहीं है परंतु प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य कुमारजीव ने इस ग्रंथ का अनुवाद चीनी भाषा में किया और इसी ग्रंथ के आधार पर उन्होंने चीन में 'सत्यसिद्धि मत' की स्थापना भी की।

चीन के साथ साथ तिब्बती संग्रहों में भी बहुत सारे कश्मीरी विद्वानों और बौद्ध भिक्षुओं के नाम लिखे मिलते हैं और उनके कार्य के विषय में लिखा हुआ पाते हैं। इन सब विद्वानों ने इन देशों में जाकर संस्कृत में लिखे गए बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद वहां की भाषाओं में किया। यह कार्य उन्होंने उस देश में विद्वानों के साथ मिलकर किया। कश्मीर के बौद्ध आचार्यो का बौद्ध मत के प्रचार प्रसार में सराहनीय और बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन विद्वानों का भारत में और भारत से बाहर भी आदर सम्मान होता था। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि बहुत सारे कश्मीरी बौद्ध विद्वानों का चीनी एवं तिब्बती शासकों ने अपने देश में आमंवित किया और उन्हें अपने यहा विशेष आदर सम्मान से रखा। यह सब चर्चाएँ हमें इन देशों में सुरक्षित पांडुलिपियों से ही प्राप्त होती है। इस संदर्भ में मेरा शोध कार्य जिसका शीर्षक Buddhist Savants of Kashmir-Their Contributions Abroad प्रकाशित हो चुका है। इसमें मैंने उपलब्ध सामग्री के आधार पर कश्मीर के बौद्ध आचार्यों का बौद्ध मत के साहित्य को बनाने में और इस मत के प्रचार प्रसार में उनके योगदान के विषय में विस्तार से लिखा है।

कश्मीर के संस्कृत बौद्ध साहित्य की बात चल रही है तो इस संदर्भ में दो काव्य संग्रहों की चर्चा आवश्यक हो जाती है जिनका संबंध बौद्ध मत से है और जो आज भी हमारे पास उपलब्ध हैं। इन ग्रंथों के रचनाकार बौद्धमत के अनुयायी तो नहीं थे। परंतु इन्हांने बौद्धमत के आदर्शों को दृष्टि में रखते हुए अपने ग्रंथों की रख्ना की।इन दो ग्रंथों में पहला ग्रंथ कप्फिनाभ्युदय है। इसकी रचना 9वीं सदी में शिवस्वामिन ने की। शिवस्वामिन कश्मीर के महाराजा अवन्तिवर्मन के समय में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके चार महाकवियों में से थे– इसका उल्लेचर कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में किया हैः

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्रचगातसाम्राज्येवन्तिवर्मणः।।

(5.34)

अर्थात् "मुक्ताकण, शिवस्वामिन्, आनंदवर्धन और रत्नाकर – इन चार कवियों ने अवन्तिवर्मन (855/6–883 ई.) के शासनकाल में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की।"

कम्फिनाभ्युदय की गणना संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों में की जाती है और बौद्ध संस्कृत साहित्य को कश्मीर का यह विशेष योगदान है। शिवस्वामिन स्वयं शैव थे परंतु बौद्ध मत से काफी प्रभावित थे। कवि स्वयं लिखते हैं कि बौद्ध आचार्य चन्द्रमित्र की प्रेरणा से ही उन्होंने इस महाकाव्य की रचना की। इस ग्रंथ में एक ओर तो बुद्ध की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है और दूसरी ओर भिक्षु बनने की अपेक्षा गृहस्थ धर्म को श्रेयस्कर बताया गया है। महात्मा बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य महाराजा कप्फिन की कथा को अवदानशतक से लेकर शिवस्वामिन ने अपनी कल्पनाशक्ति से उसे एक महाकाव्य का रूप दिया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन लाहौर से 1937 ई. में हुआ जिसको पं० गौरीशंकर ने सम्पादित किया था।

पं० गौरीशंकर को इस ग्रंथ की तीन पाण्डुलिपियां

उपलब्ध हो पाई थीं जिनमें से पहली पाण्डुलिपि गवर्नमेंट ओरियन्टल लाइब्रेरी, मद्रास में सुरक्षित है। यह पाण्डुलिपि ताड़पत्र पर उड़िया में लिखी गई है। इस पाण्डुलिपि की माइक्रोफिल्म इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में उपलबध है। मद्रास में ही इस पाण्डुलिपि के दो प्रतिलेख भी उपलब्ध हैं– एक तेलुगु में है और दूसरा देवनागरी में जिसे तेलुगु प्रतिलेख के आधार तैयार किया गया है।

दूसरी पाण्डुलिपि जो पं. गौरीशंकर को उपलब्ध हुई थी वह पुरी (उड़ीसा) के जगन्नाथ मंदिर के मुक्तिमण्डप पुस्तकालय में सुरक्षित ताडपत्र पर उडिया में लिखी गई पाण्डुलिपि का देवनागरी प्रतिलेख है। पं. गौरी शंकर ने इसी देवनागरी प्रतिलेख पर आधारित एक अन्य प्रतिलेख को जो उस समय प्रो. एफ.डबल्यू. थॉमस के पास उपलब्ध था, प्रयोग किया। इसमें श्लोंकों की संख्या भी कम है।

तीसरी ताडपत्र पर लिखी गई अपूर्ण पाण्डुलिपि थी जो अब काठमाण्डू (नेपाल) के राष्ट्रीय अभिलेखागार में उपलब्ध है। पं. गौरी शंकर को इस पाण्डुलिपि का मूल प्राप्त नहीं हो पाया था परंतु इसी पाण्डुलिपि पर आधारित एक देवनागरी प्रतिलेख उन्हें राज्यगुरू हेमराज से प्राप्त हुआ था।

1987 में जर्मन विद्वान प्रो. माइकल हान को काठमाण्डू में उपलब्ध अपूर्ण पाण्डुलिपि के 21 अनुपलब्ध पत्रों में से 17 पत्र जो थोड़े बहुत क्षतिग्रस्त हैं, क्योटो (जापान) की स्यूकोकू पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि संग्रह में मिल गए। 1990 में इन पत्रों का प्रकाशन प्रतिलिपि के रूप में ताइजुन इनाकूची द्वारा संपादित Sanskrit Manuscripts of the Buddhist Sutras from Nepal में क्योटो (जापान) से हुआ।

नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में ताड़पत्र पर 112 पत्रों वाली एक और पाण्डुलिपि है। इसका समय 1528 ई. दिया गया है और इसको राष्ट्रीय अभिलेखगार में ही प्राप्त अपूर्ण पाण्डुलिपि से उस समय तैयार किया गया है जब वह पूर्णरूप में उपलब्ध थी।

प्रो. माइकल हान ने जापान में उपलब्धि के आधार पर पं० गौरीशंकर द्वारा संपादित प्रकाशन में अस्पष्ट पाठ का संशोधन किया। इस प्रकार उसी प्रकाशन का 1989 में दिल्ली से पुनर्मुद्रित किया गया। इसमें प्रो. हान ने एक परिशिष्ट जोड़कर पाठ में लगभग पच्चास फीसदी संशोधन किया। इसके पश्चात् इस महाकाव्य के बीसवें अध्याय का प्रो. हान द्वारा संशोधित रूप अंग्रेजी अनुवाद के साथ 1997 में प्रो. बैषर्ट अभिनन्दन ग्रंथ में जर्मनी से प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष अर्थात् 2006 में इस महाकाव्य की नेवारी पाण्डुलिपि का दो भागों में–एक काठमाण्डू (नेपाल) से प्राप्त और दूसरी क्योटो (जापन) से प्राप्त पाण्डुलिपि का प्रतिलिपि (facsimile) के रूप में जापान से प्रकाशन हो रहा है। इस प्रकाशन के साथ में पूरे महाकाव्य का प्रो. हान द्वारा संशोधित पाठ एवं इस ग्रंथ के आठवें अध्याय का अंग्रेजी अनुवाद भी होगा। प्रो. हान इस महाकाव्य के बीस अध्यायों में से सत्रह अध्यायों का अंग्रेजी में अनुवाद संपन्न करने की आशा करते हैं परंतु उनके विचार में अन्य तीन अध्यायों (6, 3 एवं 9) का अनुवाद उपलब्ध व्याख्या के बिना संपन्न कर पाना कठिन है। इस महाकाव्य पर किसी व्याख्या का उपलब्ध होना अभी तक निश्चित नहीं है प्रो. हान इस महाकाव्य से बहुत ही प्रभावित हैं।

बीस सर्गो में विभाजित इस महाकाव्य में कहीं न कहीं बुद्ध से और बुद्ध मत से संबंधित चर्चाएँ हैं। अंतिम दो सर्गों में भगवान बुद्ध का उपदेश है। विंध्य प्रदेश के महाराजा कप्फिन की सेना जब श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित की सेना से युद्ध करने लगती हैं तो जब प्रसेनजित की सेनाएँ हारने लगती हैं वह भगवान बुद्ध की स्तुति करने लगते हैं। भगवान बुद्ध अपनी दिव्य शक्ति से कप्फिन का ह्रदय बदल डालते हैं। वह अब युद्ध छोड़कर बौद्ध भिक्षु बनना चाहते हैं। परंतु भगवान बुद्ध उन्हें इस बात का परामर्श देते हैं कि पहले उन्हे गृहस्थाश्रम में रहते हुए अपना राजधर्म निभाना चाहिए और बाद में उचित अवस्था में भिक्षु वृत्ति स्वीकार करनी चाहिए। वह उपदेश देते हैः

धर्म श्रद्धा सम्मतिः सत्यसारे दाने वीर्य, सम्प्रथानं दयायां।
क्षान्तौ क्षोभः प्रेम पुण्ये च येषां मुक्तास्ते गुहस्थाश्रमेऽपि।।
(20.32)

अर्थात् "जिनकी धर्म में श्रद्धा है, सत्य में बुद्धि है, जो दान देने में वीरता दिखाते हैं, क्षमा करने में उत्सुक रहते हैं, जिन्हें क्षान्ति में क्षोभ और पुण्य करने में रुचि होती है वे लोग गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी मुक्त हो जाते हैं" बुद्ध के मुख से ये पंक्तियाँ कहलवाकर कवि ने बौद्ध धर्म एवं हिन्दू धर्म का समन्वय उपस्थित कर दिया है।

ग्यारहवीं सदी ई० में कश्मीर के जाने माने विद्वान क्षेमेन्द्र द्वारा रचित बोधिसत्त्वावदानकल्पलता भी अवदान साहित्य पर आधारित एक बौद्ध काव्य ग्रंथ है। इसमें भगवान बुद्ध के पूर्व जन्मों तथा बुद्ध रूप में अवतरित जीवन की घटनाआं का संग्रह पद्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसमें 108 अवदान हैं। प्रत्येक अवदान के आरंभ में मंगल श्लोग तथा अंत में उपदेशात्मक सार श्लोक मिलता हैं अंतिम अवदान क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने लिखा है और उन्होंने इस ग्रंथ की भूमिका भी लिखी है। भारत में कई सदियों तक इन अवदानों की संपूर्ण प्रति अप्राप्य थी। नेपाल के बौद्ध संस्कृत पाण्डुलिपि संग्रह में इन अवदानों का केवल उत्तरार्द्ध ही प्राप्त था। लेकिन 1882 ई. में स्व. श्री एस.सी.दास. को तिब्बत के लाहसा

प्रदेश के पोटला मुद्रणालय में इस ग्रंथ की एक साफ प्रति ब्लाक प्रिंट में मिल गई। 620 पत्रों के इस ग्रंथ को 1662–63 ई. में मुद्रित किया गया था। जिसमें संस्कृत भाषा का तिब्बती में लिप्यन्तरण किया गया था और तिब्बती अनुवाद भी साथ मूं था। कहा जाता है कि इस पाण्डुलिपि को कश्मीर के शक्य पंडित ने 1202 ई. में तिब्बत के शाक्य पंडित kun-dgah-ryal-msthan को भेंट किया था। 70 साल के बाद इसका अनुवाद तिब्बती भाषा में Sonton lo-tsa-ba ने किया था इस अनुवाद कार्य को मंगोल शासक कुब्लई खान के धर्म उपदेशक phags-pa के आश्रय में संपन्न कराया गया और Sonton lo-tsa-ba ने यह अनुवाद भारतीय पंडित महाकवि लक्ष्मीकर के निर्देश में तिब्बत के मानयुल प्रदेश में स्थित बौद्ध विहार में संपन्न किया था। इसके बाद इस ग्रंथ का प्रकाशन तिब्बती और संस्कृत में Bibiliotheca Indica Series में श्री एस.सी.दास और हरिमोहन विद्याभूषण के द्वारा हआ इसके बाद संस्कृत मूल को श्री पी.एल. वैद्य ने दोबार संपादित करके 1959 में मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा से प्रकाशित कराया।

क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र के अनुसार यह ग्रंथ लौकिक संवत् के 27 वें वर्ष में (वैशाख मास में जब भगवान बुद्ध का जन्मदिन होता है) अर्थात् 1052 ई. में संपन्न हुआ था क्षेमेन्द्र एक बहुआयामी लेखक थे। उनकी कई रचनाएँ लुप्त हो चुकी हैं, केवल नाम मात्र से जानी जाती हैं क्योंकि उनका उल्लेख अन्य परवर्ती विद्वानों ने अपने ग्रंथों मे किया है। बौद्ध मत से प्रभावित होकर क्षेमेन्द्र ने इस विषय पर भी अपने ग्रंथ की रचना बहुत कुशलतापूर्वक की। अपने एक अन्य ग्रंथ दशावतारचरित में उन्होंने भवान बुद्ध को विष्णु के दस अवतारों में सम्मिलित किया। सोमेन्द्र ने अपने पिता द्वारा लिखे ग्रंथ अवदानकलपलता के बारे में बहुत ही महत्वपूर्ण श्लोक लिखे हैं :–

येषां सुवर्ण पतिमाप्रतान जिनावदानान्यभवन् गुहासु।
संसक्तनेत्रामृतचित्रचित्राः कालेन ते ते विगता विहाराः।।
सरस्वती तूलिकया विचित्र वर्णक्रमैः संकलितावदानः।
तातेन योऽयं विहितो महार्थः सन्नन्दनः पुण्यमयोविहारः।।
न तस्य नाशोऽस्ति युगक्षयेऽपि जलानलाल्लासपरिप्लवेन।
दिक्षु प्रतिष्ठापितपुष्पपाली स्थिरप्रसक्तप्रतिमागणस्य।।

(Intro to 108th Pallava, VV 11-13)

अर्थात् "जिन गुहाओं में सोने की विशाल प्रतिमाएँ होती थीं एवं जहाँ भगवान जिन (बुद्ध) के अवदान भित्तिचित्रों में चित्रित होते थे– ऐसे वे मन को मोहनेवाले तथा आँखों को अमृत तुल्य लगने वाले चित्रों से चित्रित विहार काल के ग्रास में चले गए। परंतु मेरे पिताश्री द्वारा निर्मित उच्च कोटि के एवं सज्जनों के प्रसन्नता एवं पुण्य प्रदान करने वाले ये अवदान रूपी विहार ऐसे हैं मानो देवी सरस्वती की तूलिका के द्वारा विचित्र वर्णों (अक्षरों अथवा रंगों) के क्रम से संकलित हों। ऐसे इन विहारों का नाश युगों युगों तक भी नहीं हो सकता है– न तो जल, और नही बिजली की कड़क या बाढ़ का पानी इन्हें नष्ट कर सकता हैं क्योंकि ये अवदान रूपी (भगवन बुद्ध की) स्थिर एवं आसक्त करने वाली ऐसी प्रतिमाएं हैं जो सभी दिशाओं में वातावरण को सुगंधित एवं सुंदर बनाकर पुण्य प्रदान करती हैं (जैसे बौद्ध विहारों में सभी दिशाओं में भगवान बुद्ध की प्रतिमाएं स्थापित की जाती थीं और उनकी पूजा अर्चना से उन प्रतिमाओं के सामने फूलों की पंक्तियों से सुंदरता और सुगंध बढ़ने से वातावरण पवित्र हो जाता था।"

आठवीं सदी के उत्तरार्ध में कश्मीर के बौद्ध कवि सर्वज्ञामित्र द्वारा रचित स्रग्धरा स्तोत्र में बौद्ध देवी तारा की स्तुति 37 पद्यों में की गई हैं इन पद्यों की रचना स्रग्धरा छन्द में की गई है। देवी तारा को अवलोकितेश्वर बुद्ध की स्त्री प्रतिमूर्ति माना गया हैं तारा को स्रग्धरा के नाम से पुकार गया है। वह धन एवं मुक्ति प्रदान करने वाली हैं। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में सर्वज्ञामित्र का उल्लेख किया है। (40210) इस स्तोत्र के तीन अनुवाद तिब्बत के Dstan-gyur में मौजूद हैं। इस स्तोत्र पर जिनरक्षित ने एक टीका भी लिखी है। इस टीका को दो तिब्बती अनुवादों के साथ सए.सी. विद्याभूषण ने संपादित किया है और 1908 में इसे Bibilotheca Indica Series में बौद्ध स्तोत्र संग्रह के प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित किया है। इस स्तोत्र के अतिरिक्त सर्वज्ञामित्र ने अन्य तीन स्तोों की भ रचना की थी। इन तीनों स्तोत्र की रचना देवी तारा की उपासना के रूप में की गई है।

ये स्तोत्र हैः

1. देवीताराकुवाक्याध्येशननाम स्तोत्र, 2 आर्यतारा साधना और 3. अंष्टभयत्राणतारासाधना। अंतिक स्तोत्र का तिब्बती अनुवाद कश्मीर के ही बौद्ध आचार्य तथागतभद्र ने अपने चीन में निवास काल में किया। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने सर्वज्ञामित्र की जीवनी के बारे में लिखा है जिसका उल्लेख जिनरक्षित की स्रग्धरा स्तोत्र की टीका में भी हुआ है।

इसी प्रकार यदि हम प्राचीन वैदिक साहित्य की बात करें तो पैप्लाद शाखा की अथर्ववेद की प्राचीनतम पाण्डुलिपि जो शारदा लिपि मे लिपिबद्ध है आज जर्मनी की टयूबिंगैन यूनिवर्सिटी में उपलब्ध है। भोज पत्रों पर लिखी गई इस पाण्डुलिपि को जर्मन विद्वान रूडोल्फ रेठ ने 1870 के दशक में जम्मू कश्मीर के महाराज रणबीर सिंह से प्राप्त किया था। इसी जर्मन विद्वान के निवेदन परमहाराज ने शारदा में लिखी गई इस पाण्डुलिपि का देवनागरी में लिप्यन्तरण भी करवाया जिसकी एक प्रति महाराजा ने विद्वान को भेंट की। ये दोनों ही शारदा एवं

देवनागरी में लिखी गई अथववेद की पाण्डुलिपियां जर्मनी में सुरक्षित हैं लगभग चार वर्ष पूर्व 2002 ई. में अर्थववेद की शारदा में लिखी गई पाण्डुलिपि की एक Digitised प्रति Compact Disk (CD) के रूप में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र को भारत में जर्मनी के उस समय के राजदूत से भेंट स्वरूप प्राप्त हुई।

पुराण साहित्य में उपपुराणों की रचना प्रायः क्षेत्र विशेष की धार्मिक तथा सामाजिक प्रथाओं को मान्यता प्रदान करने के लिए की जाती थी। इस संदर्भ में कश्मीर प्रदेश से दो पुराणों का संबंध रहा हैं सर्वप्रथम विष्णुधर्मोत्तर पुराण आता है जिसका रचना काल 400 ई. से लेकर 500 ई. के लगभग प्रतीत होता हैं परंतु कई विद्वान् इसका समय 1000 ई. तक भी ले जाते है। इस पुराण को पढ़ने से इसके रचनाकार का कश्मीर प्रदेश के भौगोलिक ज्ञान का पूरा परिचय मिलता है। इस पुराण के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में 269 अध्याय, दूसरे खण्ड में 183 अध्याय और तीसरे खंड में 355 अध्याय हैं। इस पुराण की प्रसिद्धि का प्रमाण हमें इस पुराण के उपलब्ध अनेक आण्डुलिपियों से प्राप्त होंता है, जो भारत से बाहर नेपाल एवं बंगलादेश में भी प्राप्य हैं। इस पुराण में अनेक विषयों का समावेश होने के कारण यह एक विश्वकोष का रूप धारण कर चुका हैं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र ने इस पुराण के तीसरे खण्ड के अंतर्गत 35 से 43 अध्यायों को चित्रसूत्र शीर्षक से प्रकाशित किया हैं इन अध्यायों में चित्र से संबंधित सामग्री उपलब्ध है और इसका विशेष महत्व भारती की प्राचीन चित्रकला को समझने में प्रायः सहायक होने के रूप में है। नीलमत पुराण कश्मीर का पुराण हैं यह सर्वविदित है। इसका रचनाकाल छठी से आठवीं सदी ई. के मध्य का प्रतीत होता है। इस पुराण में कश्मीर की प्राचीन संस्कृति से संबंधित रोचक सामग्री उपलब्ध है। कल्हण ने राजतरंगिणी में इसे प्राचीन ग्रंथ के रूप में उद्धृत किया है। इसमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा, बुद्ध, नाग, पिशाच, यक्ष सभी का समावेश करके एक मिली जुली संस्कृति का उल्लेख प्राप्त होता हैं साथ ही उत्सवों के वर्णनों में संगीत, नृत्य, नाटक आदि में लोगों की विशेष रुचि का ज्ञान होता हैं इस पुराण को पढ़ने से उस समय नारियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है इस तथ्य की पुष्टि भी होती है।

पश्चिमी विद्वानो का मत रहा है कि भारत का साहित्य केवल चिन्तन परक रहा है इसमें कोई ऐतिहासिक तथ्य मौजूद नहीं है। अन्य शब्दों में कहें तो उनका कहना था कि भारतीय साहित्य कल्पना पर आधारित हें। जिसमें केवल परलोक का ही चिन्तन मिलता है। इहलोक इस साहित्य का संदर्भ नहीं रहा है। परंतु जब कश्मीर में रचित कलहण की राजतरंगिणी की पाण्डुलिपि प्रकाश में आई तो पश्चिमी विद्वानों की यह धारणा निराधार सिद्ध हुई। कल्हण ने राजतरंगिणी में अपनी काव्यशैली के साथ साथ कश्मीर का आदिकाल से लेकर 1150 ई. तक का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया है। उनके पिता चम्पक तत्कालीन कश्मीर नरेश हर्ष देव के आमात्य थे और उनके चाचा कनक भी हर्ष के राज्य में उच्च अधिकारी थे। कल्हण ने राजदरबार के साथ अपना नाता कभी नहीं जाड़ा। बल्कि एक निष्पक्ष द्रष्टा के रूप में वह उस युग को देखते रहे जिसमें राजनैतिक षडयंत्रों का बोलबाला था और जो अनाचार और अत्याचार का राज्य था। राजनैतिक घटनाओं को समझने की सूक्ष्म बुद्धि उन्हें विरासत में मिली थी। अपने ऐतिहासिक काव्यग्रंथ की रचना करने से पहले उन्होंने प्राचीन साहित्य को तथा अपने देश की परंपराओं का गहन अध्यन किया था। इसका उल्लेख वह स्वयं करते हैं। कल्हण ने अपनी मातृभुमि के उत्थान और पतन की, विकास और ह्रास की सच्ची कहानी लिखन का निश्चय कर लिया था। नीलमतादि प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त शिलालेखों, दानपात्रों प्रशस्तियों तथा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों का उन्होंने स्वयं परीक्षण किया था। एक आदिर्श इतिहासकार की प्रशंसा करते हुए कल्हण लिखते हैं :

श्लाध्यः स एवे गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृतः।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती।। (1.7)

अर्थात् "वही गुणयुक्त लेखक प्रशंसनीय है जिसकी वाणी राग द्वेष से ऊपर उठकर एक न्यायमूर्ति की तरह अतीत की घटनाओं को यथार्थ से प्रस्तुत करती है।"

"इतिहास लेखन के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कल्हण उस कविकर्म को भी नमस्कार करते हैं जिसकें बिना उन प्रतापशाली राजाओं की स्मृति भी शेष न रहती जिनकी बलवती भुजाओं की छाया में समुद्रवेष्टित मेदिनी निर्भय थी।" ऐसा प्रतीत होता है कश्मीर में इतिहास लिखने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही थी। कल्हण के समय में कुछ इतिहास ग्रंथ पहले से ही विद्यमान थे, और कुछ लुप्त हो चुके थे। समकालीन इतिहास सामग्री उन्हें सरलता से उपलब्ध थी क्योंकि उनके पिता और चाचा ने हर्ष के राज्यकाल की घटनाओं को प्रत्यक्ष देखा और भोगा था। स्वयं कल्हण ने त्रुटियों के निवारण के लिए तथा अपने निजी अनुभवों को लिखित रूप देने के लिए कल्हण ने राजतरंगिणी के रूप में एक ऐसे इतिहास ग्रंथ को प्रस्तुत किया जिस पर कश्मीर के साथ साथ समस्त भारतवर्ष को गर्व है। राजतरंगिणी का रचना कार्य सन् 1148 ई. में प्रारंभ किया गया और सन् 1150 में समाप्त हुआ। राजतरंगिणी के आठ अध्यायों को तरंग नाम दिया गया है। यह अद्वितीय गाथा कश्मीर की राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को जानने का अमूल्य स्रोत है।

15वीं सदी ई. में सुल्तान शासक जैनुलाब्दीन के आदेश से सबसे पहले राजतरंगिणी का अनुवाद फारसी भाषा में मुल्ला अहमद ने किया। इसके बाद मुगलों के शासनकाल में अकबर के आदेश पर अबुल फज़ल ने राजतरंगिणी के दीर्घांशों को उनके द्वारा लिखी आइन ए अकबरी में सम्मिलित किया। तत्पश्चात् एक फ्रांसिसी चिकित्सक जिनका नाम फ्रांसीस बरनियर था 1685 ई. में कश्मीर में आए थे। उन्होंने उपनी चिट्ठियों में राजतरंगिणी का उल्लेख किया है। फिर 1823 ई० में विलियम मूरक्रॉफ्ट ने राजतरंगिणी की एक प्रति अपने कश्मीर दौरे के दौरान प्राप्त कर ली। इसी प्रति को बाद में एम० ट्रोयर ने फ्रांसीसी भाषा में अनूदित किया। तत्पश्चात् कई यूरोपीय विद्वानों ने इस अनुवाद पर कार्य करने की चेष्टा की परंतु एक मूल प्रति के अभाव में किसी को भी सफलता न मिल पाई। फिर डॉ. जॉर्ज बूहलर की कोशिशों के फलस्वरूप राजतरंगिणी के मूल की एक पाण्डुलिपि कश्मीर में 1892 ई. में प्राप्त हुई। सर मोरिस ऑरल स्टाइन ने इस ग्रंथ के महत्व को समझते हुए सर्वप्रथम इस मूल का समालोचनात्मक संपादन किया और इसे प्रकाशित किया। उसके बाद उन्होंने इसका एक अविस्मरणीय अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। पूरी सामग्री के साथ दो भागों में राजतरंगिणी को अंग्रेजी अनुवाद के साथ 1900 ई. में सर्वप्रथम प्रकाशित किया गया। तत्पश्चात् इसके पुर्नमुद्रित रूप कई साल बाद प्रकाशित हुए। 1935 ई. में श्री आर.एस. पंडित ने भी राजतरंगिणी का अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह अनुवाद अधिकतर इस ग्रंथ के काव्य सौष्ठव व साहित्यिक गुणवत्ता को ध्यान में रखकर किया गया है। कल्हण के पश्चात् कश्मीर में ऐतिहासिक काव्य रचने की परंपरा काफीसमय तक चलती रही। इस परंपरा को चालू रखते हुए सबसे पहले पं. जोनराज का नाम आता है। जिन्होंने बाद के हिंदू शासकों अर्थात् जय सिंह के काल से लेकर कोटा रानी के समय तक का इतिहास लिख डाला। इस प्रकार जोनराज ने कल्हण की राजतरंगिणी को आगे लेते हुए जैनुलाब्दीन के शासनकाल तक पहुँचाया (1920–70ई.)। परंतु जोनराज की मृत्यु 1459 ई. में हुई। तत्पश्चात् उनके शिष्य श्रीवर ने चार अध्यायों में 1486 ई. तक घटनाओं का विस्तार से उल्लेख किया हैं

श्रीवर के बाद प्राज्ञ भट्ट ने कश्मीर के इतिहास को राजावलीपता का शीर्षक के अंतर्गत आगे बढ़ाया। इस ग्रंथ में 1513–14 ई. तक के कश्मीर के अकबर के इतिहास का वर्णन किया गया है जिसे प्राज्ञ भट्ट के शिष्य शुक ने 1586 ई. में अकबर के कश्मीर पर शासन करने के दौरान संपन्न किया। साहित्यिक कृतियों के रूप में राजतरंगिणी के बाद के इतिहास ग्रंथ भले ही बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं है परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से इन ग्रंथों का महत्व बहुत अधिक है।

बिल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित का भी काव्यकृति के रूप में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। अठारह सर्गों में रचे इस काव्यग्रंथ के अंतिम सर्ग में बिलहण ने अपनी जन्मभूमि कश्मीर का, अपने गांव, खोनमुष का, अपनी वंश परंपरा का तथा अपनी यात्राओं का विवरण दिया है, जिससे इसकी ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में महत्ता बढ़ जाती है। इस विवरण में कवि यहाँ की स्त्रियों का नदी के किनारे बैठकर आपस में संस्कृत भाषा मं संवाद करने की बात कहकर कश्मीर में संस्कृत भाषा की समृद्धि की ओर संकेत करते है।।

इसी प्रकार साहित्य के अन्य क्षेत्रों पर दृष्टि पात करने से पता चलता है कि कश्मीर का लगभग साहित्य के हर क्षेत्र में विशेष्ज्ञ योगदान रहा है। काव्यशास्त्रीय सम्प्रदायों में अलंकार, रीति, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य– इन सभी संप्रदायों का जन्म एवं पल्लवन कश्मीर क्षेत्र में ही हुआ। व्याकरण के अंतर्गत चान्द्र व्याकरण और कातन्त्रव्याकरण के ग्रंथों की रचना कश्मीर में हुई है। कई विद्वानों की धारणा है कि पाणिनि का जन्म कश्मीर के इसी प्राचीन क्षेत्र में कहीं हुआ था। चरक संहिता के रचयिता आचार्य चरक भी इसी क्षेत्र के निवासी थे। नाट्यशास्त्र पर लिखी अभिनवगुप्त की टीका 'अभिनवभारती' का इतना महत्व है कि इस टीका के बिना नाट्ययशास्त्र को पढ़ना समझना सम्पूर्ण नहीं माना जाता है। कश्मीर में ही नाट्ययशास्त्र पर और भी टीकाएं लिखी गई थीं जिनकी पाण्डुलिपियां आज अप्राप्य है। संगीत शास्त्र संगीतरत्नाकर के रचेता शारंगदेव मूलतः कश्मीर के ही निवासी थे– इसका उल्लेख वह स्वयं करते हैं।

हमारे पास कश्मीर में लिखे गए संस्कृत साहित्य का विशाल भण्डार रहा है। इस भण्डार से अधिकांश सामग्री लुप्त हो चुकी है। प्राप्त सामग्री में से कुछ सामग्री प्रकाशित रूप से उपलबध हे परंतु बहुत सारी सामग्री पाण्डुलिपियों के रूप में देश एवं विदेशों में निहित है, कुछ मूल प्रतियों के रूप में या कुछ विभिन्न देशों की भाषाओं के अनुवाद के रूप में। परंतु अपने ही देश में पाण्डुलिपियों के रूप में बहुत सारी सामग्री निहित हैं जिसको अभी प्रकाश में लाना शेष है। पश्चिमी विद्वान कश्मीर के विद्वानों और उनकी कृतियों की महत्ता को समझने लगे हैं अतः उन्हांने कश्मीरी विद्वानों एवं उनकी कृतियों पर आधारित विभिन्न विषयो पर शोघ कार्य आरंभ किया है, परंतु अपने देश में इस तरफ अभी अधिक ध्यान नहीं जा पाया है। जिसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। ✠

प्रो. कान्ता कौल







गुरु नानक और लल्लेश्वरी के काव्य में दार्शनिकता

सिक्ख मत के प्रवर्तक श्री गुरु नानक देव तथा रहस्यमय गीतों की गायिका कश्मीर की लल्लेश्वरी (ललद्यदे) ने अपनी-अपनी वाणी की जो अमृत-वर्षा बहाई, उससे ने केवल वे ही अमर हुए अपितु उस वाणी को आत्मसात करने वालों का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। दोनों संत और फकीर हैं, जिनका साध्य उस परम सत्ता के साथ एकता तथा साधना प्रेम और ज्ञान है। उनकी वाणी में जो जीवन-दर्शन मिलता है, उसका उद्‌गम उपनिषद-युग में हुआ था।

अकुय ऊंकार युस नाबि दरे,
क्वनुय ब्रह्मांडस सुम गरे,
अख सुय मंत्र च्यतस करे,
तस सास मंत्र क्याह करे। **(लल्लेश्वरी)**

और स्वाद सब फीके लागे,
जब सच नाम सुख दीवा,
कह नानक सो खरा सवादी,
एक उंकार रख पीया। **(गुरु नानक)**

ओंकार है अविनाशी ब्रह्म, तीनों कालों में स्थित संपूर्ण विश्व। 'ओंकार एको रहि रहिया'। उपनिषदों का कहना है- 'ओम् इति एकाक्षरं ब्रह्म'। व्याकरण में ओम् वह अव्यय है, जिसमें कभी भी विकृति पैदा न हो, जो प्रत्येक अवस्था में अपने में स्थित रहे। इसीलिए लल्लेश्वरी कहती है कि जिसने एक ओंकार से नाता जोड़ा, उसके लिए हजार मंत्र तुच्छ हैं और गुरु नानक का कहना है कि जिसने ओंकार का रस पिया, उसके सामने सारे रस फीके और तुच्छ है। दार्शनिक तत्व के रूप में ओंकार की प्रतिष्ठा उपनिषदों में हुई है। मांडूक्योपनिषद् में इस ओंकार की व्यापक व्याख्या करते हुए अ, उ, म् का समन्वय कहा गया है, जिन्हें क्रमशः स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत और कारण जगत का प्रतीक कहा गया हैं। भारत के इन दोनों संतों ने सत्य के इसी वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किया।

गुरु नानक और लल्लेश्वरी का काव्य न तो कठोर कर्मकांड ही है और न ही दुरुह ज्ञानमार्ग जो निवृत्ति का मार्ग है। इन्होंने कर्मकांड और ज्ञानमार्ग की कठोरताओं से मुक्त सहज साधना का मार्ग प्रशस्त किया। जीवन से लिप्त हुए बिना जीवन को स्वीकार किया और गृहस्थ के अंदर ही मुक्ति का मार्ग निर्देश किया। इन्होंने सृष्टि को मिथ्या न मानकर सच माना और माया को स्वतंत्र न मानकर परमात्मा के अधीन माना है। परमात्मा ने ही माया की सृष्टि की है और वह स्वयं जगत में भिन्न-भिन्न खेल कर रहा है।

आपे आपि निरंजना जिनी आपु उपाइया,
आपे खेलु रखई आ सभु जगत सवाइआ।
(गुरु नानक)

अन्दुरी आयस चन्द्रय गारान गारान आयस,
हिह्य हिह च्युय है नाराण च्युय मारान यिम कम विह।
(लल्लेश्वरी)

ईश्वर घट-घट में विराजमान है। वह अविनाशी समस्त संसार में रम रहा है। अपने विराट रूप में वह सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। वह स्वयं ही सृष्टि का निमित और स्वयं ही उपादान कारण है। वह स्वयं ही सब कुछ है। **'एकोऽहं बहुस्याम'** की भावना से वह स्वयं ही संसर में भिन्न-भिन्न रूप धारण किए हुए है। तभी लल्लेश्वरी का कहना है-

ओर ति पानय अयोर ति पानय। **(लल्लेश्वरी)**

सोई सोई सदा सच साहिब साचा साची नाई है भी,
होसी, जाये न जासी रचना जिन रचाई,
सब में जोत जोत है सोई तिस दे चाननि,

सब में चाननि होई अलख अपार अगम अगोचर,
न तिस काल न करमा। (गुरु नानक)

वह ईश्वर स्वयं ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान का स्वरूप है:

गगन चुय भूतल चुय,
चुय द्यन, पवन तय राथ।
अर्घ चन्दुन पोश पोन्य चुय,
सोरूय तय लॉगिज़ी क्याह। (लल्लेश्वरी)

गगन में थालु रवि चन्द्र दीपक,
बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूप मलिआन लो पवणु चवरो करै,
सगल बनराई फूलंत जोती। (गुरु नानक)

प्रभु की विराट आरती के लिए आकाश थाल, सूर्य और चंद्रमा दीपक, वायु चंद्र की सुगंध और तारे मोती है। अपने-अपने आराध्य की विरहानुभूति और उससे मिलने की कामना दोनों में समान रूप से अभिव्यक्त हुई है। दोनों ने यह अनुभव किया कि परमात्मा आप की पवन, जल और वैश्वानर हैं। वह आप ही भ्रमर हैं, वही वृक्ष हैं और वहीं उस वृक्ष का फूल और फल है। जो दिव्य ज्योति परमात्मा ने मनुष्य के अंतर्गत रखी है, उसी का साक्षात्कार करना, उसी के साथ मिलजुल कर एक हो जाना मानव-जीवन का उद्देश्य है।

आमि पनु सदुरस नावि छस लमान
कति बोज़ि दय म्योन म्यति दियि तार
आम्यन टाक्यन पोज़ ज़न शमान
जुव छुम ब्रमान गरॅ गछुहा (लल्लेश्वरी)

क्या किया जाए, जिससे अपने उस घर में जाया जाए। वह घर, जहां परम प्रिय रहता है, जिससे मिलने को हृदय तरस रहा है। कौन-सा उपाय करे, जिससे ईश्वर का सान्निध्य मिले- 'माई! मैं केहि विधि लखौं गुसाई।'

महत्वपूर्ण बात तो यह है कि खंडों के बीच अखंड को कैसे खोजा जाए। उसका एक ही उपाय है- माया-ममता के बीज को ही नष्ट करना। जिसकी कामना ही मिट जाती है, उसकी चादर इस रंगीन दुनिया में घुमते हुए भी कैसे रंगीन हो सकती है। इंद्रियों के भटकाव के बीच ध्यान का सूत्र हाथ में आए, तो पा गए सच्चा रास्ता।

पंच परमाण पंच परधान।
पंचहि पावहि दरगहि मानु
पंचे सोहहि दरि राजानु।
पंचा का गुरु एक धियानु।। (गुरु नानक)

क्या करॅ पांच़न दहन त़ काहन
व्क्षुन यथ ल्यजि यिम करिथ गय
सॉरिय समहन यथ्य रज़ि लमुहन
अदॅ क्याज़ि राविहे काहन गाव।। (लल्लेश्वरी)

भटकाव, दो हो पांच हो, दस हो या ग्यारह हो, मगर उस ध्येय को मिलने का एक ही रास्ता है और वह है एक ही रस्सी को खीचने वाला ध्यान। भिन्न-भिन्न रास्तों पर ले जाने वाली इंद्रियों के कारण आध्यात्मिक राय भटक गई है और इन तत्वों और इंद्रिया को ध्यान रूपी रस्सी ही खींचकर एक ध्येय की आरे ले जा सकती है।

यम्य लूब मनथ त लोगुन दास
तॅमिय सहज ईश्वर गोरुन
तमिय सोरुय व्मथ मदचूर मोरुन
वतु नाश मोरियाण्दुन सास।। (लल्लेश्वरी)

सच्चे हृदय से निकले हुए भक्त के अत्यंत सीधे उदगार और सत्य के प्रति दृढ़ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते हैं- यह दोनों की वाणियों ने स्पष्ट किया है:

रैण गंवाई सोइ के दिवस गंवाइया जाय हीरे जैसा जन्म है कउड़ी बदले जाए

गाफिलो वुनि छय सुल तय छान्दुन यार।
(लल्लेश्वरी)

गुरु नानक और लल्लेश्वरी दोंनों मूल रूप में भक्त हैं, कवि और सुधारक बाद में। कविता उनका साधन थी और भक्ति उनकी साध्य। उनकी वाणी में पद-पद पर भक्ति का स्रोत फूटता हुआ दिखाई पड़ता है। उनका कहना है कि करोड़ों ने उसका गुणगान किया, लेकिन उसकी गुणगाथा कभी समाप्त नहीं हुई। हम लाख उसका चिंतन करें, वह हमारे चिंतन में नहीं आता-

सोचै साचु न होवई जे सोची लखवार
(गुरु नानक)

सलिलस लवण ज़न मीलिथ गछे
तोति छुय दुर्लब सहज़ व्यच़ार (लल्लेश्वरी)

उस अगम्य और अगोचर से अगाध प्रेम करना भक्त का अभीष्ट है।

मल व्यन्दि ज़ोलुम जिगर मोरुम
त्यलि लल नाव द्राम येलि दॅल्य त्रॉविमस तॅती
(लल्लेश्वरी)

भरीए मति पापा के संग।
ओहि धोपै नावै कै रंगि। (गुरु नानक)

नानक जी कहते हैं-प्रेम के रंग में जो रंग जाता है उसके भीतर पाप धुलते है।' प्रेम तो एक अग्नि है। जैसे सोना अग्नि से गुजर कर धुल जाता है, उसका व्यर्थ पदार्थ जल जाता है और सार्थक बच जाता है, उसी प्रकार प्रेम से 'मल' अर्थात् अपवित्रता जल जाती है और अंतःकरण शुद्ध हो जाते है। समस्त पाप प्रेम के अभाव से

हैं। प्रेम सृजन है, जीवन ऊर्जा है। दोनों संतो का कहना है जिस दिन हमारा प्रेम परमात्मा के प्रेम की तरफ बहेगा, रंग गए हम। परमात्मा का अर्थ है समष्टि। यह जो सारा विस्तार है, इस सारे विस्तार के साथ इस भांति प्रेम, जैसे यह एक व्यक्ति हो। फिर जिस आंख में भी हम झांकेंगे, वहीं परमात्मा को हम बैठा हुआ पाएंगे। संसार का रती–रती हमारा प्रेम–पात्र होगा। इसे ही गुरु नानक 'नाम का रंग चढ़ जाना' कहते हैं और इसे ही स्पष्ट करते हुए लल्लेश्वरी कहती हैं–

लोलुक नारु वॉलिज बुजुम।
शंकर लोबुम तमिय सूती।। (लल्लेश्वरी)

प्रेम भक्ति में मिलन का आनंद और विरह की तड़प–दोनों का महत्व है–

नानक मिलहु कपट दर खोलह
एक घड़ी खटु मासा (गुरु नानक)

गुरु नानक और लल्लेश्वरी दोनों ने योग–साधना पर बल दिया है, परंतु दोनों के अनुसार बिना भक्ति के योग त्याज्य है।

दिहिचि लरि दारि–बर त्रोपुरिम
प्राण–चूर रोटुम तु द्युतमस दम
हृदयिचि कूठरि अंदर गोंडुम
वोंमुकि चोबुकु तुलिमस बम।। (लल्लेश्वरी)

'शुन्य' शब्द का योग में बहुत महत्व है। गुरु नानक देव के अनुसार 'शून्य' वह शब्द है, जो समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण हैं। इस शून्य में मन नियोजित कला उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा योग हैं गुरु नानक देव तथा लल्लेश्वरी का शून्य "कुछ नहीं है" वाला शून्य नहीं है, बल्कि उनका शून्य वह शून्य है, जो सर्वभूतान्तारात्मा है।

गुरु नानकदेव का कहना है कि हमारे अंतःकरण में जहां निरंकारी ज्योति का निवास है, वहीं 'दशम द्वार' है, वही शून्य हैं लल्लेश्वरी का कहना है–

तंत्र गलि तय मंत्र म्वचे,
मंत्र गोल तय मोतु च्यथ,
च्यथ गोल तय केंहति नु कुने
शून्यस शुन्याह मीलिथ गौ (लल्लेश्वरी)

योगी और ईश्वर–भक्त की स्थिति स्थितप्रज्ञ की स्थिति हैं उनकी कामना एक है–

'बीणा बजाओ हे मम अन्तरे' (गुरु नानक)

अपने भीतर के प्रकाश को पहचानना, समस्त शक्ति को मूल शक्ति से जोड़ना–यही वेद की वाणी है। गुरु नानक ने स्थान–स्थान पर जीव और ब्रह्म की एकता स्वीकार की है–

सागर महिं बूंद, बूंद महि सागर
आत्मा परातमाएको करै।
अंतरि दुबिधा अंतरि मरे।। (गुरु नानक)

अंतर्मुखी होते ही भीतर की बात सुनाई पड़ने लगती है। प्रियतम का साक्षात्कार अपने दम (सांस) की सुध लेने से होती है–

दमाह दम कोरमस दमनहाले
प्रजुल्योम दॅफ तु नन्येयम ज़ाथ
अन्दुर्युम प्रकाश न्यबर छो'टुम
गटि रोटुम तु कॅरमस थफ।। (लल्लेश्वरी)

बिछड़ी आत्मा प्रभु को पाकर उसके साथ ऐसा तादात्म्य बना लेना चाहती है कि उन दोनों मे द्वैत का प्रश्न समाप्त हो जाता है। अंश होने के नाते अंशों में लीन हो जाना ही साधक का लक्ष्य है–

सूरज किरन मिली, जल का जल हुआ राम।
जोति जोति रली, संपूरण थीआ राम
(गुरु नानक)

ऊंकार येलि लयि ओनुम,
वुही कोरुम पनुन पान
शुवोत त्रोविथ सथमार्ग रोटुम
त्यॅलि लल बोह वोचुस प्रकाश वान।। (लल्लेश्वरी)

संसार मे द्वैत से ऊपर उठना ही प्रकाशवान होना हैं सागर में बूंद समाई, बूंद में सागर समाई। सागर में गागर डूब गई और गागर में सागर डूब गया–

'आप गवाइए ता सह (सहज) पाइये'
(गुरु नानक)

मेरा–तेरा ही अशाति की जड़ है– जहां 'मेरा' है, वहां अलगाव होगा ही। विश्व और विश्व नियंता में एक्य भाव आत्मा का प्रकाश तत्व है। जो भेद में जीता है, आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकता। यह 'मैं हूं' की भावना ही भेदभाव के आवरण को नष्ट करती है। लल्लेश्वरी ने इसी आवरण को नष्ट किया और उस ब्रह्म में लीन हुई–

सु यलि ड्यठुम निशि पानस
सोरुय सुय तु बोह नो कांह (लल्लेश्वरी)

अभेदत्व की अनुभूति ही सत्य की अनुभूति है। योगी वही जो परा और अपरा में एक्य का अनुभव करे। गुरु नानक और लल्लेश्वरी दोनों अद्वैतवाद का संदश देते हुए कहते है–

आत्म महि राम, राम महि आतमु
आत्म चीह्नी भए निरंकारी (गुरु नानक)

च्यतु तुर्ग वगि ह्यथ रोटुम
च्यलिथ मिलुविथ दशिनाडि वाव
तदय शेशिकल व्यगलिथ वछॅम
शून्यस शून्याह मीलिथ गव (लल्लेश्वरी)

चित्ति का रूप ही है– संपूर्ण विश्व। 'चित्ति का विराट वपु मंगल'। यह जगत ब्रह्म है, यह शरीर ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्म का निवास है। यह अनुभूति ही आनंद बरसाता है, अमृत की वर्षा होती है।

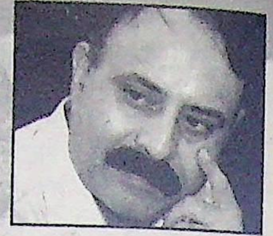
गुरु नानक और लल्लेश्वरी की अभिव्यक्ति उनके हृदय में स्थित विराट की अभिव्यक्ति है। ✠

हरिकृष्ण कौल



कश्मीरी कहानी

बर्फ



अनुवाद : डॉ. गौरी शंकर रैना

मुझे बर्फ से बेहद प्यार था। माँ भी भाद्रों शुरू होती ही रट लगाया करतीथी कि हिमदेव के आने में अब अधिक देर नहीं है और लौकी या बैंगन की फांकों की मालाएँ पिरोकर तनी–चार महीने पहले से ही तैयारियों मेंलग जाती थी। मैं समझ नहीं पाता था कि ये तैयारियां बर्फ के स्वागत के लिए होती थी या उसके बचाव के लिए। में नहीं जानता था कि माँ को भी बर्फ से प्यार था या वह उससे डरती थीं।

माँ कहती थी और शायद ठीक ही कहती थी कि बर्फ ठंडी होती है लेकिन मुझे बर्फ नहीं धुनी रूई से भरी नर्म रजाई की गरमाइट का एहसास दिलाता था। ताऊ सड़क बाबू थे इसलिए ताई माँ की तरह लौकी बौ बैंगन की फाँकों को छुपाकर हिमदेव की स्पागत नहीं करती थी। वह पड़ोस के धुनिये को घर बुलाकर मन भर रूई धुनवाती थी, गद्दे और रजाइयाँ भरवाती थी। नौसिखिए दर्जो से घर पर ही रजाइयों के लिए दूध से उजल गिलाफ सिलवाती थी। ताई का दिमाग तथा धुनिये दर्जो का काम देख्कर मैं खुश होता था। मुझे लगता था कि बर्फ का स्वागत ऐस ही होना चाहिए। जब बर्फ गिरनी शुरू होती थी तो मुझे लगता था कि ऊपर आकाश में पड़ोस के धुनिये से भी बूढ़ा कोई धुनिया ढेर सारी रूई धुनता है और दर्जनों दर्जी दूध से भी उजले अनगिनत गिलाफ–सी कर नीचे धरती पर बिछा देते हैं। मुझे इन सफेद गिलाफों, चद्दरों पर, नयी–नयी गिरी बर्फ पर चलना भी अच्छा लगता था। पांव धरा नहीं कि टखने तक बर्फ के अन्दर धस गया। मैं कल्पना किया करता था कि ताऊ–ताई या उनके लड़के–लड़कियों के शरीर भी इसी तरह गद्दों और रजाइयों के अन्दर धंस जाते होंगे।

"रजाई नर्म भी होती है और गर्म भी। मगर बर्फ नर्म होकर भी सर्द, बहुत सर्द होती है।"–एक दिन माँ ने मुझसे कहा था।

मैं उत्तर में बस मुस्कराया था। मैं जानता था कि फटी–पुरानी रजाइयों और गद्दें कहलाने वाले चिथड़ों से ज्यादा सर्द और कोई चीज नहीं हो सकती है। दिन, महीने औ वर्ष बीतते गये। बर्फ गिरती ही बर्फ और फटे–पुराने चिथड़ों में ज्यादा सर्द कौन है.....उस बात पर गहरा मतभेद रखते हुए भी मैं और माँ ने बर्फ के स्वागत या उससे अपनी सुरक्षा के लिए लौकी बौर बैंगन की फांकों के हार पिरोए थे। हर बार की तरह उस बार भी हिमदेव समय पर आये पर आये विकराल रूप धारण करके। दुपहरी ढलते ही घोर अन्धकार छागया और रात हो गयी। बर्फ जमकर किगरी औश्र गिरते ही जब गयी। जाने किस दिशा से तीखी शीत जहर आई औश्र आकाश से गिरते नर्म रूई के गोले धरती पर पहुँचत ही कठोर चट्टानों में बदल गये। इन बर्फीली चट्टानों से छूटती ठंड, घर की दीवारों को ही नहीं, शरीर के हाड़–मांस को भी बेध कर हमारे खून को जमाने लगी। मैंने सहायता के लिए पड़ोसियों को पुकारा। लेकिन मेरी गुहार उन तक पहुँचने से पहले ही जम गयी और मेरे घर की दहलीज पर ही गिरकर फूट गयी। मां ने चूल्हे में धधकते अग्निदेव की शरण में जाना चाहा। मगर डर और शीत के मारे अग्निदेव की धुएँ की चंद्र रेखाएँ उगलते बुझी लकड़ियों में सिमटकर रह गये थे। माँ ने मुझे छाती से भींच लिया और रोने लगी। मैंने उसे अपने कंधे पर बिठाया और दरवाजे की ओर रूख किया। माँ और भी जोर से रोने लगी और चारों और बिखरी घर की हर चीज को आँ से समेट–समेटकर मन की गठनी में बाँधने लगी। मगरे मेरे सामने पानी भरा लोटा, भात से खाली, थाली, खुला पंचांग, बंद्र राशिफल–जो भी वस्तु आई उसे मैंने निर्ममता से ठोकर मारकर अपने रास्ते से हटा दिया।

घर की दहलीज लाँघकर ज्योंही मैंने बर्फ की चट्टान पर पांव रखा तो मैं और मेरे कंधों परसवार माँ दोनों फिसल गये। बर्फ जब तब रूई बनी रहती है, भीतर धसे पांवों का प्यार से पकड़कर सहलाती रहती है। लेकिन जब चट्टान बन जाती है तब अपने सगे–संबंधियो को भी अपने आस–पास टिकने नहीं देती है। उसमें कठोरता के साथ–साथ फिसलन भी आ जाती हैं मैं और माँ दोनों फिसल गये और सारी रात फिसलते रहे। फिसलते–फिसलते ही हमने जाने किन्तु पर्वत शिखरो को, चहेती घाटियों को, गूढ़ घने वनों को, टैढ़ी

बल खाती नदियों को, लम्बी सीधी सुरंगों को, पतली–पगडंडियों और खुले मैदानों को पार किया। मालूम नहीं हमारा इस प्रकार उखड़कर फिसलना और लुढ़कना कब तक जारी रहा। हां लुढ़ककर जब हम संभले तो हमने आने को वहां पाया जहां तापती रेत का अन्तहीन विस्तार था और ऊपर आकाश में आग बरसाता सूरज था।

माँ जोर से चीखीं। फिर कुछ क्षण चुप रहने के बाद गहरा निःश्वास लेकर बोलीं–"कोई नहीं आया।"

"कोइ आयेगा भी नहीं।" मैंने कहा। मैं नहीं चाहता था कि वह अब भी भ्रम में रहे।

"क्यों?" उसने पूछा।

"क्योंकि इस अन्तहीन रेतीले विस्तार में हमारी स्थिति रेत के दो कणों, दो बिनदुओं से अधिक नहीं है।"

"बिन्दु"

"हां, बिन्दु जिसकी न लम्बाई होती है न चोड़ाई और न ही मोटाई।"

"लम्बे, चौड़े, मोटे न सही। पर जो हैं सो हैं।" मां ने कहा। उसने गर्म रेत को अपने गुट्ठी में बन्द किया था औश्र अब कसी मुट्ठी धीरे–धीरे ढीली करके बन्द हथेली से रेत का सरकना देख रही थी। मैं अपनी बात कहता गया– "नगण्य बिनदु की भि विशिष्ट पहचान होती है। पर यह पहचान अक्षरों पर निर्भर करती है। अक्षरों ो हट दो तो बिन्दु की पहचान भी अपने आप मिट जायेगी।"

माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने मेरी बात सुनी भी नहीं थी। असल में मैंने भी बात उससे नहीं कही थी। मैं तो केवल बदलते मौसमों के अवकल समीकरण में अक्ष से अलग हुए बिनदुओं का मुल्य ज्ञात करके अपने अस्तित्व के जटिल गणित को सुलझाना चाहता था।

"हम कहां है?" माँ ने सवाल किया।

"वहां जहां नीचे तपती रेत औ ऊपर जलता सूरज है।" मैंने जवाब दिया।

"सूरज कब तक जलता रहेगा? अस्त कब होगा?" माँ ने फिर पूछा।

इस बार माँ के सवाल का मुझे तुरन्त कोई उत्तर नहीं सूझा। मैंने घुमकर चारों ओर देखा। चारों ओर सपाट और अन्तहीन विस्तार था। न कहीं कोई उदयाचल था और न कहीं अस्ताचल। मेरे लिए यह कहना कठिन था कि सूरज का उदय कब हुआ है और उसका अस्त कब होगा।

सूरज भी शायद मेरी और माँ की तरह विशाहीन था। अन्तर केवल इतना था कि हम रात भर दिशाहीन लुढ़कते रहे औश्र वह दिन भर एक ही जगह दिशाहीन टंगा हैं मंच पर फंसे उस अभिनेता की तरह जिसे अपने सारे संवाद बोलने के बाद भी प्रस्थान के लिए क्यू नहीं मिला हो। मुझे एक पुरानी पंक्ति याद आई–उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग। और मैंनेअपने सिर के ऊपर जलते उस पतंग की आंर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा जो अब बोल नहीं रहा था, वृद्ध हो गया था। वह मुस्कराकर बोला– "चालीस–पचास साल पहले जब बड़े–बड़े लोगों ने तोपो और तालियों की गूंज में अपने कर–कमलों से डोर खींचकर आकाश में झंडे फहराए थे तब किसी पतंगबाज ने उनसे होड़े लेते हुए मुझे भी आकाश में उड़ाया था। वह डोर को खींचकर या ढील...... चाही दिशा में मोड़ने की बात सोच ही रहा था कि उसे अचानक मांझे–धागे की चरखी जमीन पर पटक कर भाग जाना पड़ा।"

"क्यों?" मैंने अश्चर्य से पूछा।

"शेयर खरीदने, गैसे, टेलीफोन, प्लाट, फ्लैट, मारुति एक हजार की बुकिंग करने।"

"मेरे मुंह से फिर 'क्यों' निकला।"

"क्योंकि अब पतंगबाजी का नहीं, सट्टेबाजी का जमाना है। आज जितना खरीद सकते हो खरीदो। कल उसे ही दुगने दोमों पर बेच सकता हो।"

"अगर हमने भ्ज़ी कल अपना घर आधे दाम पर बेचा होता तो कितना अच्छा रहता?" सूरज की बात सुनकर मैंने माँ से कहा।

"घर बेचते?" वह मुझे टूटी–फूटी आंखों से देखने लगी। उसे शायद याद नहीं रहा कि सह उस समय एक ही जगह अटके सूरज के ठीक नीचे बेघर बिना छत झुलस रही है।

"जानती हो तुम्हारा घर तुमसे कितनी दूर छूट गया है?" मैंने उससे पूछा।

"दूर नहीं छूट गया है।" माँ ने मेरी बात का विरोध किया– "हां, अभी जरूर दूर है। पर कभी–न–कभी यह दूरी भी मिट जायेगी" सुनकर मै। अवाक् रह गया। बुढ़िया भविष्य के सपने देखती है जबकि उसके सामने कोई भविष्य नहीं था। हां, पछतावे के लिए पीछे एक लमबा अतीत जरूर था।

मेरी चुप्पी देखकर माँ चुप भी हो गयी। नहीं, यह चुप नहीं थी। दूसरी ओर मुंह करके धीरे धीरे सवक रहीं थी। "क्या बात है, माँ?" मैंने पूछा।

"देखती हूँ तुम मुझसे सीधे मुंह बात नहीं करते।" माँ फूट पड़ी– "जानते हो अब तुम पर ही पूरी तरह आश्रित हूं। बोझ बनी हूं।"

"क्या कहती हो? मैं तुम्हार इकलौता बेटा हूं और तुम मेरी माँ हो। हम पहले भी एक–दूसरे पर आश्रित थे और आज भी हैं।"

"नहीं पहले नहीं थे।" माँ ने प्रतिवाद्र किया।–

शेष पृष्ठ 40 पर......

'मैं अपनी जन्नत के टुकड़े न होने दूंगा'

युग कवि दीनानाथ नादिम से पद्मा सचदेव की अंतरंग बातचीत

जो लोग श्रीनगर में शंकराचार्य की पहाड़ी पर गये हैं, उन्हें मालूम है उसका रास्ता प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर एक सुंदर पगडंडी हैं। कोई भी मोड़ ऐसा नहीं आता, जहां खड़े होकर तय किये हुए सफर का रस्ता पूरे–का–पूरा देख लेने को मन न करता हो। और रास्ते में कई मोड़ हैं। कहीं हरी–भरी घास छीलती कश्मीरी औरतें, कहीं महकता हुआ जंगली गुलाब, कहीं पीले–वासंती फूलों का झुरमुट, कहीं नरगिस, कहीं लिली। किसी मोड़ के नीचे पत्तों की ओट में भविष्य के सपने देखते जवां दिल, कहीं रुक–रुक कर सांस लेता पहाड़ी बूढ़ा, कहीं फक्क से उड़ जाती बुलबुलें औश्र कहीं संदेशा देने के लिए घर ढूंढ़ते काले–काले कौए। हर जगह, कोई–न–कोई दृश्य आपके पांव में बेड़ी डाल देता है और जब शंकराचार्य की पहाड़ी पर पहुंचते हैं तो हर तरफ से शंकराचार्य के चरणों में बिछी कश्मीर की सुंदर घाटी के सोलह सिंगार किये चेहरे पर एक रंग आता, दूसरा जाता दिखाई देता है, मानो प्रियतम की राह में पलकें बिछी हों।

सुस्त–सी गाभिन गाय जैसी मैली जेहलम (वितस्ता) भी पल–भर के लिए रुक जाती है। चारों तरफ दिखने पर मन हवा के डोले में तैरने लगता हैं डल झील पर कतार में लेटे हाउसबोट धूप सेंकते, अलसाये, बेखबर विदेशी मालूम होते हैं। चार चिनारी में सिर जोड़े हुए चिनार मानो लोकगीत गा रहे हों। परिपर्वत संत की तरह समाधिस्थ, हज़रत बल पीर–सा सौम्य और हरीमहल किसी मुहब्बत की दास्तां को सीने से लगाये श्रोताओं को ढूंढ़ता हुआ–सा लगता है। यह सब देखते–देखते इनसान वापस उतरना भूल जाता है।

अतीतजीवी बौराया मन

जिंदगी का सफर इससे भिन्न नहीं है। छोर पर पहुंच कर पीछे की सब घटनाओं का जायज़ा लेता मनुष्य मोड़–मोड़ पर रुक जाता है। थम जाती हैं वे सब कहानियां, जो उसने अपने सफर के दौरान जीम और निकल खड़े रह जाते हैं वे क्षण, जिन्हें पकड़ना मुश्किल नहीं होता। सत्तर वसंत देख लेने के बाद बार–बार पीछे मुड़ कर देखना, उनमें जीना अच्छा लगता हैं खास तौर से जब आदमी बीमार होता है, तो वह माजी (अतीत) के और करीब हो जाता है। जब अकेला होता है और जब बाहर लोग सोचते हें यह आराम कर रहा है तब माजी के सारे वर्ष, महीने और दिन बुतों में तब्दील हो कर बीमार के पास आ कर बैठ जाते हैं। बीमार मुस्करा कर उनसे खैरियत पूछता है। जो कट गये और जो नहीं कटे, सभी क्षण लंबे–लंबे पहरेदारों की तरह चक्कर काटते रहते हैं। कभी परदा हिला जाते हें, कभी खिड़की खोल जाते हैं। कुछ बरसों से महान कश्मीरी कवि दीनानाथ नादिम अस्वस्थ चल रहें हैं।



श्रीमती नादिम, लेखिका और दीनानाथ नादिम

पक्षाघात करीब से हो कर गुज़र गया हैं। यादें गड्डमड्ड हो रही हैं, पर मौजूद हैं। खुशगंवार बचपन का ननिहाल सजीव हो उठा है। तहसील पुलवामा में, मूरन गोंव में नादिम साहब का ननिहाल है। दो बरस के थे, तब भी वहीं गये थे, पर बताते समय जो उनके चेहरे पर मासूमियत है, उससे लगता है, कल ही ननिहाल में सर्दियों की छुट्टियां गुज़ार कर आये हैं। कह रहे हैं, "मैं वहां बड़ा खुश रहता था। मैं घोड़े पर गया था मेरी मां मेरे साथ थी, वह बड़ी अच्छी घुड़सवार थी। मैं उसके आगे बैठा था। घोड़े का अहसास कम और उसकी आगोश का अहसास ज्यादा था। बड़ा शर्मीला लड़का था मैं। मेरे ननिहाल में एक नौकर था–सुबहाना, वो मुझे डराया करता था। मैं स्टोर रूम में छिप जाता था। जब मैं आसपास देखने के लिए चेहरा निकालता था, तो वो वही होता था, हंसता हुआ। उसे देख कर मैं डर जाया करता था। ये उन दिनों की बातें है, जब मेरे नाना विष्णु भट्ट जिंदा थे। वे काफी पढ़े–लिखें थे और शायरी भी करते थे।" यह बात नादिम साहब ने ऐस कही जैसे मेरे पास गुल्ली–डंडा भी है और गेंद भी। मुस्करा कर वे फिर कहने लगे, 'वहां मुरन गांव में चंद ही लेग थे। एक बात बताऊं, मित्र गांव वहां से एक मील दूर है। कश्मीरी का बादशाह कवि महजूर वहीं का हैं वह मुझे कहता था, मैं तुम्हारा मामा लगता हूँ'।

"मेरे पिताजी की जब मृत्यु हुई, तब मैं नौ साल का था। मेरे पिता क्लर्क थे। उन दिनों ज़्यादा पढ़ाई–लिखाई उर्दू में होती थी। मेरे पिता महाभारत, रामायण, गीता सब पढ़ते थे," यह कह कर नादिम साहब फिर ननिहाल चले गये। आंखों को जरा सा घुमाया और कहने लगे, "मुरन में एक छोटी नदी बहती थी। बड़ी हसीन नदी थी वो।" उन्होंने मेरी तरफ देखा। मैंने हस कर कहा, "आप मुझे चिढ़ा रहे हैं कि वो नदी मैंने नहीं देखी। मेरे गांव मे देविका बहती है जो उत्तरवाहिनी हो जाती है।" कहने लगे, "मुझे उस नदी का नाम याद नहीं है। हमारे मकान के पास ही थी। उस नदी पर मैं एक छोटा सा घाट बनाता था। कागज़ की कश्तियां उस पर चलाता था। मेरे साथ मेरा छोटा भाई भी होता था। आसपास सेबों के दरख्त थे। सेबों के दरख्त मित्र गांव में भी थे। वहां एक पनचक्की भी थी मैं वहां जाता था। कभी–कभी बड़ा डर भी लगता था। चक्की की आवाज़ सुन कर रोंगटें खड़े हो जाते थे। छिप–छिप कर फिर भी वहां जाता था कभी सुबहाना के साथ, कभी अकेले। कभी सुबहाना मुझे वहां बिठा कर खुद इधर–उधर हो जाता तो चक्की की गड़गड़ाहट से मैं परेशान हो जाता।

चमचम करता पारे-सा बचपन

"कभी लगता परियां गा रही हैं। मैं वो आवाज़ें सुनता। कभी पास में धान के खेत पर सलवार की मुहरी

कल्चरल फ्रंट के प्रेजिडेंट सादिक साहब थे। उन दिनों मेरे मन में इन्कलाब पैदा हुआ। मैंने कश्मीरी में मुक्त छंद की पहली कविता लिखी - ब ग्यव नें अज़ (मैं आज नहीं गाऊंगा)। मेरी कविता में देशप्रेम, इनसान से प्यार, शांति व खुशहाली की बात होती थी। मेरी मुक्त छंद की कविता सुन कर सादिक साहब ने कहा, 'ये सच में हमारी ज़बान में कविता लिखी गयी। तुम ये अलफाज़ कहां से लाये? मेरा सर फख्र से ऊंचा हो गया है।

ऊपर उठाये खेतों पर झुकी धान की बालियों से खिलवाड़ करती औरतों की आवाज़ कान में पड़ जाती, तो मैं उन्हं सुन कर गुम हो जाता–

थलि वो वमय ब्योलये कलि दामाह च्यतमो

(मैंने बीज बो दिया है। आओ मेरे जिगर के प्यारो, मेरा दूध पियो)"।

नादिम साहब ननिहाल से निकले। कहने लगे "सद्रन में मैं अकेला होता। छह भाई–बहन पैदा हुए थे। सब मर गये। एक बहन ब्याही हुई थी, वो भी मर गयी। उसके तीन लड़के थे। मौत लगता था आती–जाती रहती हैं उस सहन की दीवार में एक छेद था। उस छेद में मैं आंख गड़ा कर देखता। वहां एक गृहस्थन बैठी बर्तन मांजती रहती। मैं उसे देख कर शर्माता रहता। वहीं सुराख में एक आदमी दिखाई देता। वो बहुत हंसता था हंसते–हंसते लोटपोट हो जाता था उसकी शक्तल मुझे आज भी याद है। उसकी दाढ़ी खिचड़ी थी। मुझे बहु अच्छी लगती थी। जब में 10 बरस का हुआ, तब उसने आना बंद कर दिया। 11 साल की उम्र तक मैं मा का दूध पीता था। जब मैं चार साल का था, सहन में लकड़ियां गाड़ कर सोचता था, नीचे तल–पाताल तक यह लकड़ी जायेगी और मुझे इसकी आवाज़ सुनाई देगी–

यंदराज़ॅनि दरबारॅ नगमॅ करान छु परिस्तान तॅ सोज़ि मंसूर वज़ान कन म्य दित्मस गयस देवानो

(इंद्र के दरबार मे परियां गा बजा रही थीं, मैंने कान लगा कर सुना और दीवानी हो गई)।

नादिम साहब कहने लगे, "अहमद बुखारी (बटवारी) का यह गीत मैंने तीन–चार साल की उम्र में सुना था। दिमाग में एक खाका खिंचता चला गया। यों लगता मैं गाना सुन रहा हूं। अकेलापन बड़ा अखरता था और फिर मैं अपने भीतर ही दूसरों को पा लेता था। मेरे

पिताजी की मृत्यु पक्षाघात से हुई। उन दिनों तो इसका कोई इलाज नहीं था। वे छह दिन बीमार रह कर चले गये।

"ननिहाल में मेरे मामा मिशन स्कूल से मैट्रिक करने वाले पहले बैच में थे। डी.सी. होने के बाद वे मरे। नाना बेटे के वियोग में पागल हो गये। संसार से विरक्त हो गये। उन्होंने एक नौकर को मुतबना बनाया, सब घर उसे सौंप दिया। मेरे नाना के पास पंद्रह, सोलह खार ज़मीन थी।" फिर नादिम साहब मेरी तरफ देख कर कहने लगे, "जिस ज़मीन में 80 किलो बीज बोया जाये, उसे खार कहते हैं। उस मुतबने ने नाना जी की बड़ी सेवा की। नाना ने सारी जायदाद उसी के नाम कर दी। मेरी मां सिर्फ नाना के मरने पर गयी थी। फिर कभी न गयी।

"पिता के मरने के बाद मैं मां का सबसे करीबी दोस्त हो गया। मां सवेरे चार बजे उठती थी। रोते–रोते खाना बनाती थी। एक कौल (कटोरा) में खाना भर कर शौहर के नाम का रखती। उसमें कुशा डालती, तिल डालती, फिर दहलीज़ पर रख देती। एक कौआ रोज़ आता, सारा कटोरा साफ कर जाता कभी–कभी मुझे लगता यह मेरा बाप हैं। कभी मैं उससे बाते भी करता था। उन दिनों पेंशन न मिलती थी। मेरी मां बड़ा महीन चरखा कातती थी। उससे जो पैसे मिलते, उन्हीं से गुजर–बसर होती थी। रात को मां चरखा कातती होती तो मुझे नींद आ जाती। मैं उसकी रक्षा के लिए घास का एक तिनका उसके ऊपर रख देता था। वो बड़ी सुंदर थी। रात को दीये की रोशनी में उसके चरखे की घूं–घूं की आवाज़ आती रहती, मानों लोरी के स्वर कमरे में तिर रहे हों। उसी आवाज़ से मैं सो जाता। कातते–कातते वो लोकगीत, लीला, भजन आदि सब गाती थी। उसकी आवाज़ बड़ी अच्छी थी। दिन में वो शाली कुटती, रुई बीनती तो भी गाती रहती। उन्हीं गीतों ने मुझे शायर बना दिया–

मनॅ कुय मे' गिलिटूर चो'ल
मति सातॅ वनतम कोनॅ फो'ल
कमि शायि स्यदन छायि हो'ल
कवॅ ज़ानॅ कम्य सॅन्ज़ि मायि वो'ल
क्याह ताम छु गोमुत बुलबुलन

(बहार आने के साथ गिलटूर फूल चुपकट्ट से भाग गया। जब बहार पागल हो गयी, वो क्यों नहीं खिला? किस जगह जा छिपा? क्या जाने किसकी मुहब्बत में गिरफतार हो गया। बुलबुलों को क्या हो गया, वे गातीं क्यों नहीं?)

दिये की कांपती लौ और मां की गुनगुन

"मां की आवाज धीमी, परंतु साफ होती। एक–एक लफ्ज़ मैं पीता रहता था। मैं हैरान होता, इसे इतना कुछ कैसे याद है। उसकी आवाज़ अंधेरे घर में रोशनी उंडेलती रहती। मैं मंत्रमुग्ध बैठा सुनता रहता। मुझे लगता था, इससे अच्छा दुनिया में कोई नहीं गा सकता। एक छोटा सा दिया, जो टिमटिमाता रहता था, मेरी माँ की आवाज़ की धमक से कांपता रहता था। हम दिया जला कर ही सोते थे।

"मुझे अपने नाई से बड़ा प्यार था। एक हांजी (मल्लाह) भी था, उससे भी गुझे बड़ी मुहब्बत थी। में मां के साथ ही सोता था। एक दिन रात को मुझे पेशाब आया। मां ने कहां बाहर मत जाओ।' मैंने खिड़की खोली तो वहां एक आदमी खड़ा था। मैंने डर कर खिड़की बंद कर दी। माँ ने फूस की पगड़ी बना कर सर पर रखी, फिर खिड़की से बाहर झांक कर पर्दानी आवाज़ में कहा, 'लक्षमण जू, अभी जाग रहे हो। नींद नहीं आ रही क्या? वो आदमी पगड़ी देख कर डर गया और भाग गया। मां हुक्का पीती थी। उसने हुक्का गुड़गुड़ाया। मैंने खिड़की खोल कर देखा, वहां कोई न था। मैं मां के साथ दुबक कर सो गया। पर बड़ा डर लगा। उन दिनों संवेरे चार बजे राजा की तोप दगती थी। सब लोग उठ कर घूमना शुरू कर देते थे। सरकार की तरफ से रास्ते में लालटेनें जलती थीं। शाम को उनमें तेल डाला जाता था। जिसके पास तेल का ठेका था, उसे लोग रमज़ान लालटीन कहते थे। वो तेल डाल–डाल कर ही बड़ा आदमी हो गया।

"ग्यारह बरस की उम्र में मैंने दो ट्युशनें क लीं। मैं तब सातवीं क्लास में था। डेढ़ या दो रुपये एक ट्यूशन के मिलते थे। मां चरखा कातती थी। उसका धागा इतना बारीक होता था कि दिखाई न देता था। मैं अचरज से भरा धागों का आरोह–अवरोह ताकता रहता था जो रुई खरीदते थे, उन्हें पुयवोन्य कहते थे। अब तो उनकी जात ही पुयवोन्य है।

"सुबह सवेरे हरि पर्वत पर जाने का मुझे बड़ा शौक था। वहां पर लालच भी था। हम बादाम चुराते थे। वहां बौद्ध लोग बसते थे। हमारे पीछे वो लाठियां ले कर भागते थे। बादाम चुरा कर जब हम दौड़ते थे, तो पीछे मुड़ कर भी न देखते थे। वहां से आ कर मैं स्कूल जाता था। दसवीं में मैं सकूल में प्रथम आया। शेख अब्दुल्लाह ने कुछ दिन हमें साइंस पढ़ायी। स्कूल में एक बाग था, जो गवर्नर दिलावर खां ने लगाया था। उसके चारों तरफ पानी था। एक पुल अंदर जाने के लिए था। बाग मुगल स्टाइल का था। बड़ा सुंदर था। उसी पुल से हम पार

जाया करते थे। शेख साहब सबके साथ बड़ी आत्मीयता से बातें करते थे। तीन महीने ही वे स्कूल में रहे, पर इस अरसे में ही उन्होंने सब का मन मोह लिया। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था। स्कूल से वो मुस्लिम एजीटेशन में चले गये। मुझें याद आ रहा है। एक खानसामा था। उसका नाम था अब्दुल कादिर। उसने महाराजा के खिलाफ तकरीर की थी। नतीजतन उसे जेल हो गयी। पर वो बड़ा चर्चित रहा।लोग उसे देखने आते थे, ऐसा कौन जवांमर्द है, जो महाराजा के खिलाफ बोल गया। एक बार बहुत भारी भीड़ उसे देखने गयी। जेल के जेल के दरवाज़े बंद कर दिये गये। फौज आयी, गोली चली और कई लोग मारे गये। उव खानसामा का मज़ार खानयार में है। इस जुलूस की रहनुमाई शेख साहब ने की थी। फिर उन्होंने 1938 में एक रीडिंग रूम चलाया। उनके साथ कई लोग थे। जब इस संस्था में हम कई हिन्दू भी आ गये तो इसका नाम नेशनल कॉन्फ्रेंस हो गया। बाद में कॉमरेड धन्वंतरि की वजह से हम कॉमरेड हो गये।"

इतना कह कर नादिम मुस्कराये। फिर बोले, "मैट्रिक में मैं फर्स्ट आया तो अढ़ाई रुपये वाज़ीफा मिलने लगा। कॉलेज में तीन महीने पढ़ा। उन्हीं दिनों हम लोगों ने बम भी बनाया था। मेरे सभी साथी मारे गये। महाराज के खिलाफ लड़ाई तेज हो गयी थी। हम सब शंकराचार्य की पहाड़ी पर जाते थे। सब भगतसिंह से प्रभावित थे। स्पिरिट के लैंप पर हाथ रख पर पार्टी में शामिल होते थे। फाकामस्ती के दिन थे। मैं एकाध ट्यूशन भी करता था। कभी घर में भात बनता, कभी न बनता। भूख से अपना रिश्ता काफी नजदीकी हो चला था। उन दिनों मैं लिखता था। एक बानगी देखो–

पैदा हुए हो तुम उस पाकीजा आसतां से
हद्दे जमीन जिस जा मिलती है आसमां से
जिस जा कि बर्फ नीलम बन कर पिघल रहा है
पानी जहां का पारा बन के उबल रहा है
ये मातृभूमि अपनी चकबस्त का वतन है
औ' हिंद के हज़ारों तारों की अंजुमन है
लल्लेश्वारी ने जिस जा भगती का गीत गाया
अभिनव ने जिस वतन से नूरे खुदा को पाया
मलबूस खाक में हूं आसीन तन हमारे
मोहताज चीथड़ों को उरियां बदन हमारे
अंगारे कांगड़ी में, हैं दिल में दाग रोशन
कुर्ते की खिड़कियों में गम के चराग रोशन

इतना कह कर नादिम अतीत में गुम हो गये। खिड़की के बाहर धुले आसमान की खिड़की से पहाड़ियां झांक रही थीं। नादिम साहब के घर की खिड़की के बाहर देवदार अच्छा कलाम सुन कर मानों प्रशंसा में झूम रहा था। नादिम साहब कहने लगे, "क्रालखोड गांव के जलसे में मैंने ये नज्म पढ़ी थी। शेख साहब ने गले लगा लिया था। फिर लोगों से कहा था। देखो कश्मीर ने कैसा हीरा पैदा किया है, इसमें इकबाल जिंदा है, पर इसके घर में शाम के लिए चावल नहीं है।"

कवि नादिम ने मुझे घूरा, फिर कहने लगे, "यह बात सच थी। महीन सूत कातते–कातते मेरी मां बीमार रहने लगी थी। कमल की नास से निकलते बारीक धागों जैसा सूत मेरी मां को खाने लगा था। मैं पार्टीबाजी में था, वहां से जेल गया। तीन दिन हवालात में बंद रहा। अदालत में पेशी हुई। पुलिस वाले लाते थे, ले जाते थे, पर गनीमत थी कि खाना दोनों वक्त मिलता था। मां ने सुना तो दुखी हो कर अपनी बहन के बेटे के पास चली गयी। उन्हीं दिनों मैंने मजदूर का ख्वाब, मादरे–कश्मीर नज्में लिखीं, जो लोगों ने बड़ी पसंद कीं ।"

यातना-यंत्रणा के दुखते दिन

"मैं छोटा सा लड़का निक्कर पहने गाता रहा। सब लोग मुझ पर फ़िदा हो गये। एक बार घर में मैं अपने बाप का श्राद्ध कर रहा था। भादो के महीने में श्राद्ध होते थे। तभी पुलिस का आदमी आया। कहने लगा 'जरा नीचे चलो।' मैंने कहा, 'मैं बाप का श्राद्ध कर रहा हूं।' वे कश्मीरी पंडित था, श्राद्ध की पवित्रता जानता था पर बोला, 'श्राद्ध को भाड़ में फेंको, चलो।' पुरोहित डर गया। मैंने श्राद्ध पूरा किया। पुलिसवाले घर की तलाशी लेने आये थे। और तो कुछ मिला नहीं, शायरी की सारी कॉपियां उठा कर ले गये और जला दीं।"

"उसके बाद मैं जम्मू चला गया। एक कमरा किराये पर लिया। बहुत सी ट्यूशने कीं। फिर मां को भी बुला लिया। फिर बहार आयी और कश्मीर जाने को मन तड़पने लगा। मुझे कश्मीर की बहार बड़ी पसंद है। कश्मीर आ कर मैंने एक स्कूल खोला। मेरे आठ दोस्त भी मेरे साथ थे। सनातन धर्म स्कूल खोला। उसकी सात शाखाएं हो गयीं। फिर कॉलेज भी खोला। बीस रुपये महीने के मिलते थे। मां खुश हो गयी। तभी मैंने बंदे मातरम स्टाइल पर कश्मीरी में लिखा–

"ज़गत ज़ननी भवऽनी मऽज पनॅनी
दिमै मीठ्य पार्दॅनय माता नमस्ते।"

मैंने पूछा, "क्या आप कभी महाराज हरिसिंह से मिले थे?" कहने लगे, "वो भी मजेदार किस्सा है। 1933 में मैं कर्नल कॉलबिन, जो अंग्रेज था, उसके पास नौकरी मांगने गया। उसने कहा, 'मेरे पास नौकरी नहीं है?' मैंने कहा, 'मैं मजदूरी करने को भी तैयार हूं।' उसने मज़ाक

में कहा, 'गुपकार में राजा के महल बन रहे हैं। वहां मजदूरी मिलेगी।' मैं वहां दूसरे दिन चला गया। गुपकार में मजदूरी करने लगा। मैं दुबला-पतला मासूम सा लड़का था। कई मजदूर मेरा काम कर देते थे। दो-चार दिन बाद मैंने देखा, राजा बालकनी में खड़ा था। उसने मुझे इशारे से बुलाया। मैं गया। मजदूर फुसफुसाने लगे, ये महाराजा साहब हैं। मैं सबसे साफ सुथरा था, हसीन था, मजदूरों से अलग लगता था। महाराजा ने कश्मीरी में पूछा,

तुम यहां क्या करने आये हो?
मैंने निडर हो कर कहा, मजदूरी करने।

वे मुस्करा कर अंदर चले गये। मजदूर उन्हें खुदा समझते थे। मैं उनका लीडर बन गया। बस उस खिड़की में "राजा को देखा। स्कूल की जो कमेटी मैंने बनायी थी, वहीं मैंने खुद ट्रेड यूनियन भी बनायी। मैनेजिंग कमेटी ने मुझे लीडर चुन लिया। उन दिनों एक अखबार निकलता था मार्त्तंड। मैं पढ़ भी रहा था। बी.ए. मे सारे पंजाब में फर्स्ट .... तो अखबार में नाम आ गया। उन दिनों शिक्षा के महकमे में सईदैन नाम का डाइरेक्टर था। चूंकि मास्टरों की ग्रांट बंद हो जाती थी, इसलिए सौ मास्टर उसके पास गये। यह डाइरेक्टर कश्मीरी पंडितों के बड़ा खिलाफ था। मेरी उससे थोड़ी झड़प हो गयी तो मैं नौकरी छोड़ कर डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में टीचर बन गया। तब मेरी तनख्वाह सौ रूपये महीना थी। पर अफसोस, मां मर गयी थी।"

मैंने एक दिन उनके पास बैठते ही पूछा, "आप तो काफी आगे चले गये हैं। कभी तो शादी भी हुई होगी। ये भाभी जी हमेशा से ही यहां पर न होंगी।" हंस कर बोले, "मुझे तो लगता है ये हमेशा से यहीं थी।" तभी श्रीमती नादिम भी आ गयीं। नादिम साहब उनसे पूछने लगे, "हमारी शादी 1942 में हुई थी न?" उनके 'हां' कहने पर बोले, "मैं तब एफ.ए. में था। शादी करने का कोई मन न था, पर मां ने बड़ी ज़िद की। शादी करनी पड़ी। इनके पिता जंगलात के हेडक्लर्क थे। मां अड़ गयी। बोली, इस मकान में दिया कौन जलायेगा?' मैंने कहा, 'तुम मरोगी तो मैं दुनिया ले कर क्या करूंगा?"

शादी का क्या, बस हो गयी

"बहन-भाई मर गये। बाप मर गया। रोज़ लगने वाली भूख भी मर गयी, पर मां ने कोई बात न सुनी। दिया जलाने के लिए इसको ले आयी। जब शादी हुई, ये 15 बरस की थीं। शादी के बाद थोड़ा समय इसको भी देने लगा तो मां ने समझा लड़की मेरा बेटा चुरा ले गयी। इसे देख कर वो खुश न होती। पहले सारा समय उसी के पास बैठता था अब इसके पास भी बैठने लगा। अगले साल ही हमारी बेटी पैदा हुई तो मां बड़े चाव से उसे पालती रहीं उन दिनों मेरा स्वास्थ्य ठीक न था। बुखार रहता था। लोगों ने कहा, 'इस अंतड़ियों की टी.बी. हो गयी है।

मैंने कहा, "जब मैं बीमार हुई थी, तब मुझे कॉर्टिज़ोन ने बचा लिया। पर आपके समय तो कॉर्टिज़ोन न थी"। कहने लगे, "हमारी कॉर्टिज़ोन कबाइली थे। लब उनका हमला हुआ, तब मुझे उबाल आया। में मिलिटेंट शायरी करने लगा। उन्हीं दिनों कश्मीरी के मशहूर शायर महजूर भी मिले। उनका एक अदारा था। उसमें मैं जाता था। एक बार मैंने अपनी कवता पढ़ी, तो महजूर ने पूछा-

"ये मुहावरेदार भाषा कहां से सीखी?"

"मैंने कहा, 'माँ से'

बोले, 'किस मां से?"

"मैंने कहां, 'आपके गांव के पास के मुरन गांव की है मेरी मां।' तब महजूर ने गले लगा लिया। बोले, मैं तुम्हारा मामा हुआ। खूब दोस्ती हो गयी।"

मैंने नादिम साहब से पूछा, "ये शेर क्या महजूर का है?-

जूव जान वंदहा हिंदोस्तानस
दिल छुम पॉकिस्तानस सूॅत्य

(हिंदुस्तान, तुम पर यह जान कुरबान है, पर मेरा दिल पकिस्तन के साथ है)।"

नादिम बोले, "हां, एक वक्त उसने ऐसा लिखा था। लोगों के आधे रिश्तेदार तो बंट गये। तकसीम ने ऐसा ही किया।"

उस दिन ईद का दूसरा दिन था। नादिम साहब के घर की खिड़की से अज़ान की आवाज़ आ रही थी। उसी दिन खीरभवानी में भी मेला था। खीरभवानी की देवी के दर्शन करने श्रीमती नादिम गयी थीं। मौका ताड़ कर मैंने सवाल किया। नादिम साहब थोड़ी देर खामोश रहे। फिर बोले-

"हां, शादी के बाद दो-तीन याराने हुए, एक औरत से बड़ा इश्क हो गया। वो भी मुझ पर फरेफता थी। एक दिन उसे शिकारे पर लेने जा रहा था। कहीं से बीवी ने सूंघ लिया। घर आ कर ज़हर खा लिया। मैं इसे अस्पताल ले गया। इसका पेट साफ करवा दिया। खूब मिन्नतें की, पर ये नहीं मानी। आखिर जब बोली तो कहने लगी, 'आज तक हमे तो कभी शिकारे पर नहीं ले गये। उसे खूब घुमाते हो।' मैंने बड़ी मिन्नते की, थोड़ा

गुस्सा भी किया। फिर शिकारे पर भी ले गया, डल लेक में घुमाया।" मैंने हंस कर कहा, "इतना बड़ा कांड करने की क्या ज़रूरत थी, पहले ही ले जाते।" कहने लगे, "ऐसा नहीं होता है।" इस बात पर खूब कहकहे लगे।

थोड़े अंतराल के बाद नादिम कहने लगे, "जीवन एक जगह से पूरा खाली है। एक अतृप्ति है। मां के मरने के बाद यह अतृप्त जगह और खाली हो गयी। मैं जब गरीब अध्यापक था, तब उस औरत ने कहा था, 'चलो, हम पाकिस्तान भाग जायें, वहां शादी कर लेंगे।' पर मैं उसके लिए भी कश्मीर न छोड़ सकता था। इसके अलावा मेरी मां मेरी कमज़ोरी थी। मुझे मदर कांप्लेक्स था। जब तक वो जिंदा रही, मैंने किसी को प्यार न किया। उसके मरने के बाद जो ज़िंदगी में खालीपन आया, उसे सिर्फ पत्नी न भर सकती थी। पर और काई भी न भर पाया। माशूकाओं ने वो खला कम तो किया, पर क्या फायदा ! मेरी एक दोस्त हिंदी की बड़ी विद्वान थी। जिस दिन उसकी शादी हुई, मैंने 'कश्मीर के जवान' कविता लिखी। मैं खुश रहने वाला शख्स हूं। दोस्ती तो मेरी सबसे हो जाती है। एक बार चीन गया था तो वहां एक दुभाषिये से दोस्ती हो गयी। उसे मेरी ये कविता बड़ी पंसद आयी—

मैं अपनी जन्नत के टुकड़े न होने दूंगा

"कविता सुन कर वो बहुत रोयी। औरत कहीं की भी हो, एक जैसी होती है—अच्छी मां जैसी अलौकिक, बेटी जैसी दाता। उसके जैसी दोस्त भी कोई नहीं हो सकती। सब न्योछावर कर सकती है। बाकी मैंने अपनी माशूकाओं के बारे में लिख रखा है, जब न रहूंगा तब पब्लिश भी हो सकता है।"

मैंने कहा, "अगर उन सबका अपना घर हुआ तो क्या वो साबुत रह सकेगा?" कहने लगे, "तो चलो पब्लिश नहीं करेंगे।"

संकीर्ण व्यवस्था, सुलगते सवाल

बहुत दिनों से एक सवाल मन में सुलग रहा था। उस दिन पूछ ही लिया, "कश्मीरी पंडितों ने आज तक किसी तरह निभा लिया। अब इनके बच्चों को तो कश्मीर में न कहीं सीट मिलती है, न नौकरी। बहुत कम कश्मीरी पंडित हैं, जो इस बात से संतुष्ट हैं। सब अपने बच्चों को दिल्ली या और जगहों में भेजना चाहते हैं। नहीं?"

सवाल का जवाब जितना आसान था, उतना ही मुश्किल। कोई अपनी मातृभूमि की जन्नतीगोद छोड़ कर बाहर नहीं जाना चाहता। बहुत से कश्मीरी पंडित रिटायर होने के बाद वापस लौट आते हैं। कुछेक बच्चों की वजह से रियासत से बाहर दिन काट रहे हैं। खैर नादिम साहब बोले, "मेरी बेटी पंचशील हमेशा फर्स्ट आती थी, पर उसे मेडिकल में सीट न मिली। सादिक साहब मेरे बड़े अच्छे दोस्त थे। इस मामले में वे भी कुछ न कर सके।"

मैंने कहा, "जम्मू में भी यही सुनती हूं, बच्चों को सीट नहीं मिलती। ये सीटों का क्या चक्कर है? ये सवाल करते हुए डर भी खूब लगता है। सच सुनने की हिम्मत कहां है?"

नादिम साहब उसी रौ में कहने लगे, "मेरे बेटे को भी सीट नहीं मिली। सादिक साहब कहने लगे, 'आप कश्मीरी पंडित हैं न! कश्मीर में अस्सी प्रतिशत मुसलमान हैं, बीस प्रतिशत हिन्दू। सीटों का बंटवारा तो ये देख कर ही होगा' फिर मैंने अदालत में याचना की तो सीट मिल गयी। अब वो इंजिनियर है।

"पद्मा जी, ये सब तो है, फिर भी मेरी लाश यहीं से निकलेगी, भारत हमें बहुत प्यारा है, पर दिल कश्मीर में ही है, कश्मीर मेरा आंगन है। इसके इर्द—गिर्द फसील हैं इसमें या तो हम फूल खिलाते हैं या खुद खिलते हैं। राजा के ज़माने में भी जब शख्सी हकूमत थी, अस्सी प्रतिशत पंडित क्लर्क या चपरासी थे, मज़दूर कोई न था।"

कश्मीर की अलसायी सुबह का सूरज शंकराचार्य की चोटी पर से अपनी गुलेल में रोशनी की तपिश के कंकड़ घास पर लदी—फदी ओस पर मार रहा था। मैने सोचा, आज पैदल जाऊंगी। जेहलम के किनारे—किनारे धीरे—धीरे मानों चल नहीं रही होऊं, खिसक रही होऊं।

वे बोले, पता है तुम्हें, नेशनल कॉन्फ्रेंस का पहला जलसा, प्रताप पार्क में हुआ था। उन्हीं दिनों में बहुत बीमार हो गया। उन्हीं दिनों में मिर्ज़ा आरिफ बेग से मिला। उन्होंने एम.एस.सी. किया था। और शायरी करते थे। उन्होंने कहा, 'चलो निशात चलें।' कुछ और शायर भी साथ थे। वहां मैंने कश्मीरी कविता पढ़ी—

उठो बाग की कोयल जागो
और जल कुंवरि को मनाओ
देखो वसंत की हवा कुहू—कुहू करके आयी है
रेहाना के फूल जगाने को आये हैं

बीमारी की घुलन, अभावों की मार

"उन दिनों इस तरह मैं शायरों की जमात में शामिल हो गया। कल्चरल फ्रंट के प्रेजिडेंट सादिक साहब थे। उन दिनों मेरे मन में इन्कलाब पैदा हुआ। मैंने कश्मीरी में मुक्त छंद की पहली कविता लिखी – **ब ग्यव नें अज़** (मैं आज नहीं गाऊंगा)। मेरी कविता में देशप्रेम, इनसान से प्यार, शांति व खुशहाली की बात होती थी। मेरी मुक्त छंद की कविता सुन कर सादिक साहब ने कहा, 'ये सच में हमारी ज़बान में कविता लिखी गयी। तुम ये अलफाज़ कहां से

लाये? मेरा सर फख्र से ऊंचा हो गया है। जब मैं एम.एल.सी. बना तो देने के लिए मेरे पास ढाई सौ रुपये न थे। वे रुपये डी.पी. दर ने दिये। बात करते–करते ही बीते हुए लम्हें जिंदा हो जाते हैं। मैंने तुम्हें बताया न कि हम शालीमार बाग में जाते थे। जब मैं बीमारी से घुट–घुट कर मर रहा था, तब मेरा एक दोस्त इंजेक्शन ले कर बाग में आता था। इंजेक्शन दे कर वो सिरिंज के पानी में ही चाय बना कर पिलाता था। बड़ा लुत्फ आता था।

"1981 में बीमार हुआ, तो एक दिन सुबह लगा, मुझे कुछ हो गया है। हाथ–पैर उठ न सकते थे। डॉक्टर ने कहा, 'ब्रेन हैमरेज हो गया है।' अब तो ठीक हूं। सब घूम–घूम कर याद आता रहता है। 1920 की बात बताता हूं, अकाल जैसी हालत थी। अनाज का दाना दिक्कतों से मिलता था। लोग भूख से मर रहे थे। तानाशाही ने लोगों के हथियार छीन लिये थे। अन्याय के विरुद्ध पहली आवाज 1924 में उठी। उन दिनो लॉर्ड रीडिंग वॉयसरॉय थे। हर नया वॉयसरॉय कश्मीर जरूर आता था। यहां एक धारणा थी कि जब भी कोई वॉयसरॉय आता है कुछ–न–कुछ बुरा होता है – बीमारी या अकाल। जब वॉयसरॉय की सवारी जेहलम पर से गुज़री तो लोगों ने कहा : गदर गदरे बेदाद / उन दिनों इतनी गरीबी थी कि एक मुहल्ले में एक शख्स के पास पहनने लायक एक ही कपड़ा होता था। उसी एक कोट को मांग कर लोग शादी–ब्याह मे जाते थे। उसके बाद 1931 तक लोग काफी बेदार हो चुके थे। स्वतंत्रता के लिए भी लोग कंधे–से–कंधा मिला कर लड़े। उसी वक्त महजूर ने ये कविता लिखी थी–

वलो हा बागवानो नव बहारुक शान पैदा कर

"यह नज़्म लोगों के दिलों में घर कर गयी। जब शेख साहब ने यह नज़्म गायी तो मुझे एहसास हुआ कि जो असर अपनी भाषा का होता है, वो किसी भाषा का नहीं होता। जब मैं छोटा था, तो मेरी मां सोते समय मुझे ललद्यद के 'वाख' और नुंद ऋषि के 'श्रुख' सुनाया करती थी। मुझ अब तक याद है।"

मैंने पूछा, "वैसे तो कवि पुरस्कारों के लिए नहीं लिखता, पर जब मिल जायें तो जिक्र तो करना ही पड़ता है। "

नादिम अपनी मखसूस हंसी घोलते हुए बोले, "कई पुरस्कार मुझे मिल चुके हैं। 1971 में जब मुझे रूस का सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार मिला, तब मैंने लिखा–

ये किसने मेरा दरवाज़ा खटखटाया
क्या ये डाकिया था?
या हवा का झोंका था जो एक पल में गुज़र गया
या जैसे डॉक्टरों ने कैंसर का इलाज पा लिया हो
या मेरे पड़ोसी की बेटी का बुखार कम हो गया हो
या फूलों ने आपस में सरगोशी की हो।

मैंने पूछा, "कश्मीरी में जो पहली आज़ाद नज़्म आपने लिखी वो ज़रा सुनाइए।" वे एकदम सुनाने लगे–

"मैं आज न गाऊंगा
मैं आज गुलों बुलबुलों के वो तराने न गाऊंगा
जो मुझे मीठी नींद सुलायें
क्योकि युद्ध का गर्दो गुबार
रूपसियों के रंग–रूप को मटियामेट कर रहा है।"

फिर कहने लगे, "सिर्फ मुक्त छंद की कविता ही नहीं ऑपेरा, गज़ल, नज़्म, रुबाई, पहेलियां, सॉनेट, सभी पहले मैंने ही लिखे।"

मैंने पूछा, "कश्मीर में इतने अच्छे शायर हैं, आप तो सिरमौर हैं। ये बताइए कि कश्मीरी में कोई शायरा क्यों नहीं है? ललेश्वरी और हब्बाखातून को छोड़िए, वो इतिहास हैं। मैं आज की बात कर रहीं हूं।"

कहने लगे, "तुम्हारे जम्मू में क्यों नहीं कोई और शायरा आयी? वहां दीनूभाई हैं, शास्त्री हैं, मधुकर, यश, दीप सब हैं। नये लड़के कितने हैं, पर लड़की जिसका नाम हो, कहां है।"

मैं चुप हो गयी, क्या कहती! वो मुझे गौर से देखते रहे, फिर लिहाज़ में आ कर बोले, "तुम एक ही हो, पर चमकदार हो।"

नादिम साहब के शिष्य और कश्मीरी के शायर चमनलाल चमन कहने लगे, "आज़ादी ने कश्मीर को दो महान विभूतियां दीं। सियासी मैदान में शेख साहब और साहित्य में दीनानाथ नादिम।"

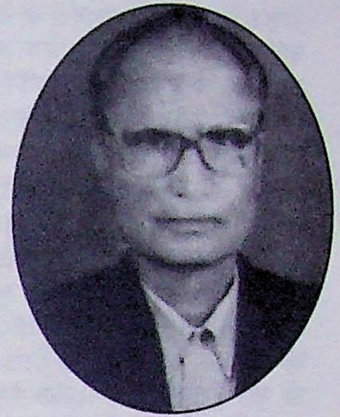
नादिम साहब को अपनी कितनी ही कविताएं याद हैं। आधुनिक कश्मीरी कविता के जन्मदाता अगर महजूर हैं, तो नयी कश्मीरी कविता के जन्मदाता नादिम हैं। कहने लगे, जब तक हिंदी में अनुवाद न हो, मातृभाषा की पुकार वादी से आहर नहीं जाती। हिन्दी का माध्यम बड़ा ज़रूरी है। एक कविता यों है, थोड़ी सुना दूं–

संभव है। सूर्योदय होगा
काली उन चट्टानों के बीचों बीच निशा आयी है
और उसके छितराये बालों पर टपकी है
उज्जवल ओस
ऊपर से अलसायी इक पगडंडी कंपित कंपित–सी
चली आ रही है धीरे से संभव है, सूर्योदय होगा।

(यह ऐतिहासिक साक्षात्कार साप्ताहिक 'धर्मयुग' दिनांक 25 मई 1986 अंक में छपा था।)

चन्द्रकान्ता





वागर्थ के साधक अर्जुनदेव मजबूर

बर्फ के ताज धरे संगरमाल की गोद में बसे, निःसर्ग के अकूत सौन्दर्य को पलकें उघाड़ कर देखते, कश्मीर के ऐतिहासिक गाँव ज़ैनपुरा में जन्मे–जिये मजबूर साहब अपनी यात्रा पूरी कर चले गए। कश्मीर काव्य–जगत में एक गहन विवर छोड़ कर। कश्मीर की सांस्कृतिक विरासतों से गर्वित, यह अनुपम शब्द शिल्पी, ताउम्र, सतीसर के प्राकृतिक वैभव और साहित्यिक धरोहरों को शब्द–ब्रह्म में संजोता, यहाँ के इतिहास–पुराण की गौरव गाथायें गाता श्रोता–पाठक को मंत्र–मुग्ध करता रहा, और कश्मीरी काव्य–कोश को सम्पन्न। मजबूर साहब से मेरी पहली मुलाकात 1986 ई. में हुई, जब मैं भुवनेश्वर से घरवालों से मिलने कर्णनगर (ससुराल) आई थी। यों 1984 में, जब राजकमल प्रकाशन से, कश्मीर संबंधित मेरा उपन्यास, ऐलान गली जिन्दा है' छप कर आया, उन्हीं दिनों मजबूर साहब का पहला पत्र मुझे मिला था तब मेरे पति डा. विशिन भुवनेश्वर में कार्यरत थे। मजबूर साहब का पत्र निश्छल आत्मीयता और प्रशंसा से भरा तो था ही, साथ ही घर से दूर रह रही एक बहन के साहित्यिक अवदान के लिए, गर्व भरे अहसासों और शुभकामानाओं से सिक्त भी था। वह उपन्यास पढ़ कर लिखा गया पत्र, मुझे उनके उदार और मुक्त मन की झलक दे गया, बल्कि कुछ शब्द तो मुझे भिगो गए थे। उन्होंने लिखा था, "जो काम कश्मीर में रहकर हम नहीं कर पाए, वह मेरी एक बहन ने, घर से हज़ारों मील दूर रह कर किया है। सच कहूँ तो तुम्हारा यह उपन्यास पढ़ कर मेरा सिर गर्व से ऊँचा हो गया। तुमने पहली बार, कश्मीर की सामाजिक संस्कृति और लोक जीवन को वृहत्तर हिन्दी जगत तक पहुँचा कर, आम भारतीय पाठक का यह मिथ्या भ्रम दूर कर दिया है कि कश्मीर झीलों–झरनों व हिम आच्छादित पर्वतों की ही सौन्दर्यस्थली मात्र है, या राजनैतिक मुद्दा भर। इस उपन्यास के माध्यम से हिन्दी पाठक जान गया कि कश्मीर में एक समृद्ध संस्कृति और सर्वधर्म समभाव से रखा लोक समाज है"। उसके साथ ही मजबूर साहब से पत्रों का सिलसिला चलता रहा, और हम एक दूसरे के व्यक्तित्व–कृतित्व से परिचित होते रहे। 1986 मे वे जैनपूरा से मेरे घर कर्णनगर मिलने आए, बैग में अपने बगीचे के सेब लेकर। बातचीत के दौरान उनका अनोपचारिक रवैया और उदार व्यक्तित्व परत–दर–परत खुलता गया। खेमे बंदियों से दूर, मुक्त भाव से पसंदीदा रचनाओं की प्रशंसा करना और अपना सर्वोत्तम साहित्य को देने का उनका संकल्प, अभिभूत करने वाला था। 1924 ई. में जन्मे मजबूर साहब तब उम्र के साठ वर्ष पूरे कर चुके थे और कश्मीरी भाषा–साहित्य को बीसेक उत्कृष्ट पुस्तकें दे चुके थे।

कश्मीर की सांस्कृतिक विरासतों से गर्वित, यह अनुपम शब्द शिल्पी, ताउम्र, सतीसर के प्राकृतिक वैभव और साहित्यिक धरोहरों को शब्द-ब्रह्म में संजोता, यहाँ के इतिहास-पुराण की गौरव गाथायें गाता श्रोता-पाठक को मंत्र-मुग्ध करता रहा, और कश्मीरी काव्य-कोश को सम्पन्न।

कश्मीरी काव्य के ख्याति–स्तम्भ अब्दुल अहद आज़ाद, दीनानाथ–नादिम, मास्टर जिन्दा कौल और रहमान राही उनकी काव्य यात्रा के सहयात्री रहे। कालान्तर में मजबूर साहब अपनी उदार सोच, शाश्वतता में आस्था और सार्थक जीवन मूल्यों को अर्थ देने वाली दृष्टि के साथ, कलात्मक भाषा और अभिव्यक्ति और निश्छल आचरण पर उन्होंने अहंकार और तुच्छता के दाग नहीं लगने दिए। मुझसे मिले तो अपनेपन के अधिकार से मुझे दूरदर्शन केन्द्र और आकाशवाणी ले गए जहाँ श्री रफीक मसूदी ने मेरा साक्षात्कार लिया और दूरदर्शन के डायरेक्टर पंडित लस कौल जिनकी बाद में आतंकवादियों ने हत्या की, से लंबी बातचीत हुई। मजबूर

साहब ने कल्चरल अकादमी के टेंग साहब और यशस्वी कवि मोतीलाल साकी से मेरा साहित्यक परिचय कुछ इस तरह कराया जैसे वे अपनी निजी उपलब्धियाँ गिना रहें हों। कश्मीर की बेटी ने हिन्दी साहित्य को जो भी थोड़ा–बहुत योगदान दिया था, उससे वह भावुकता की हद तक प्रसन्न थे। ईर्ष्या, द्वेष और कुढ़न से अनछुआ उनका मन सचमुच बहुत बड़ा था। मुझे याद है कश्मीर की एक लेखिका ने 'पहल' में 'ऐलान गली' उपन्यास पर समीक्षा के बहाने कुछ निहायत पूर्वाग्रही ऊटपटांग बातें लिखी थीं, जिससे वे बहुत दुःखी हो गए थे। उसे लेकर एक लम्बा पत्र उन्होंने मुझे लिखा था। या शायद सोचा हो, मुझे बुरा लगा हो, जबकि मैंने उन बेसिर पैर फतवों का नोटिस भी न लिया था, क्योंकि उनसे नज़र लेखिका की साहित्य संबंधी समझ का उथलापन ही नज़र आता था। बहरहाल! कश्मीर के अप्रतिम सौन्दर्य और सांस्कृतिक धरोहरों के गीत लिखता यह संवेदनशील रचनाकार, मात्र कविता तक ही सीमित नहीं रहा। गद्य लेखन और अनुवाद क्षेत्र में इनका विपुल योगदान रहा। कालिदास की अगर कृति मेघदूत का अनुवाद, 'ओबुरु श्येछ इनकी कश्मीरी साहित्य को अनुवाद के माध्यम 'से दी गई अनुपम देन है। कृष्ण जू राज़दान, ललद्यद, रसूल पोंपुर, मोतीलाल साकी जैसे सशक्त कश्मीरी कवियों की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद कर उन्होंने कश्मीरी काव्य की संपन्नता से हिन्दी जंगत को परिचित कराया। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित भारतीय कविताएँ हों, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, या जम्मू–कश्मीर कल्चरल अकादमी के अनुवाद ग्रन्थ हो, महबूर साहब का नाम सक्षम अनुवादकों में जरूर दर्ज होगा। नुन्दऋषि के श्रुखों, ललद्यद के वाखों, दीनानाथ नादिम की शायरी और अहद ज़रगर के शास्त्रीय कलामों के अनुवाद इनकी उपलब्धियाँ कहीं जा सकती हैं। जन्मभूमि कश्मीर से अज़हद प्यार करने वाले मजबूर साहब ने नीलमत पुराण से लेकर कश्मीर के इतिहास, बौद्ध, हिन्दू, डोगरा ओर इस्लामी संस्कृति पर शोधपूर्ण ग्रंन्थ लिखकर अपनी मातृभूमि की धरोहरों से वृहत साहित्य जगत को परिचित कराया। वे तमाम उम्र शोधार्थी रहे। अनेक सांस्कृतिक–साहित्यक संस्थाओं एवं संगठनों से जुड़े मजबूर साहब ने सामाजिक और शैक्षणिक आन्दोलनों में भी सक्रिय भूमिका निभाई कश्मीर की सौहार्द पूर्ण विरासतों के गीत लिखता। यह संवेदनशील रचनाकार अंत में एक विस्थापित का जीवन जीने को अभिशप्त हो गया। विस्थापितों को अपने पुरखों की धरती पर अन्तिम सेज भी कहाँ मिलती हैं जो मजबूर साहब या मोतीलाल साकी को मिलती, जिन्होंने जन्मभूमि से निर्वासन की पीड़ा को मर्मान्तक अभिव्यक्ति दी। साकी ने कहा था, 'घर खोना जिंदा ही चिता पर जलने के समान है, घर खोने का दुःख वही जानता है, जिसने अपना घर खोया हो', मजबूर साहब ने स्वर्ग से सुंदर अपनी धरती को रक्तंरजित नरक में तब्दील होते देखा, जो किसी भी भुक्तभोगी के लिए घातक होता हैं संवेदनशील रचनाकार के लिए तो ऐसी स्थिति, न भरने वाला ज़ख्म बन जाती है कितना बड़ा विद्रूप है कि मनुष्य की अजेय ऊर्जा में विश्वास रखने वाले मजबूर साहब ने, न सिर्फ उस ऊर्जा के स्रोत को सूखते देखा बल्कि सदियों से शैव, बौद्ध और इस्लाम की सांझी परम्पराओं से पोसी गई ऋषि–सूफी जीवन शैली को ध्वस्त होते देखने की यातना भी सही। उनकी कलम ने चीत्कार सा प्रश्न किया कि सभी सत्व, विश्व के सभी दर्शन सभी नीति–विधान, सभ्यता के महल संस्कृति के शिखर क्यों बौने पड़ जाते हैं, एक गोली के सामने?

पिछले वर्ष डॉ. शांत के साथ मैं जम्मू में उनके निवास पर उनसे मिलने गई। कुछ समय से वे बीमार चल रहे थे। अपने परिजनों के बीच रहकर भी खुद को भीतर से अकेला महसूस कर रहे थे। अपनी मिट्टी से उखड़ने की पीड़ा भीतर ही भीतर उन्हें सालती थी। लेकिन शरीर क्षीण होने के बावजूद उनका रचनाकार शिथिल नहीं हुआ था। उन्होंने मुझे अंग्रेजी और उर्दू में अनुदित अपनी दो पुस्तकें भेंट की और कहा, इन पर कुछ लिखना। मैं बिस्तर पर पड़े उनके शरीर के ढ़ाँचे को देखकर द्रवित हो गई, पर उनकी हार न मानने की ज़िद के आगे नतमस्तक हो गई। उनके कमरे की खिड़की से हैबिस्कस के ठिंगने झाड़ के पार कच्चे–पक्के मकान दिखाई दे रहे थे, जिनमें शहर से दूर उस बियाबान में कई विस्थापित कश्मीरी शरण ले रहे थे। यहाँ न हरमुख पर्वत पर झरता सुनहरा प्रकाश था, न शाहे चिनार, वीर कीकर की छतनार छाँह केसर के फूलों की रंगो बू और संतूर की धुनें उनकी स्मृतियों के गहवर में ही महक–गूंज रही थी।

कश्मीर की सौहार्दपुर्ण विरासतों के गीत लिखता यह संवेदनशील रचनाकार अंत में एक विस्थापित का जीवन जीने को अभिशप्त हो गया। विस्थापितों को अपने पुरखों की धरती पर अन्तिम सेज भी कहां मिलती है, जो मजबूर साहब या मोतीलाल साकी को मिलती, जिन्होंने जन्मभूमि से निर्वासन की पीड़ा को मर्मान्तक अभिव्यक्ति दी।

'दशहार', 'दज़बुनि कोसम', संगर तु 'संगरमाल से पॅद्य–समयिक्य मापता 'त्योल' का रचनाकार कवि, अतीत और वर्तमान के बीच पड़ी दरारों–खाईयों को तन–मन से पाटता, बेहद मार्मिक प्रयासों से, उम्मीदों के बुझते दीयों को कलम की ओट देकर बातें रखना चाहता

था। मनुष्य और मानवीयता में विश्वास रखने वाले मजबूर साहब ने विस्थापन का त्रास भोगते भी उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा, न जीवन संघर्षों से मुँह मोड़ा। इतिहास के ज्ञाता थे, जानते थे सदियों पहले वादी में कश्मीरी पंडित ग्यारह घरों में सिमट कर भी अंततः लाखों की तादाद में बस गए थे। तब भी एक प्रलय आई थी, आज भी आतंक चेहरा लिए प्रलय ही आई है, कारण भिन्न हों पर त्रासदी वहीं है। तब मनुष्य और मानवीयता को बचाने कुछ मसीहाओं ने जन्म लिया है, आज महामानवों का युग नहीं है। सत्ता और स्वार्थ हर शै पर हावी है, इसी से अवसाद और नाउम्मीदी ज़्यादा है। इसका विकट अनुभव हम सब की तरह उनका भी रहा।

मजबूर साहब कलम की ताकत में विश्वास रखते थे। वे एक नई दुनिया की तामीर करना चाहते थे। रचनाकारों से कहते थे, 'रछ़राव–खम्बर यिम याद वतिव। अतलास वलुख संगम्य सोचिक्य। अख नोव दुनिया तखलीक करुन।'

परम्परा से पोषित, नवीनता का स्वागत करता एक नया युग उनका सपना था। आतंकी समय में उनका सपना बिखर गया, लेकिन भरोसा नहीं टूटा। इसी भरोसे ने शब्द–शिल्पी से गुहार कराई, "मेरे शब्दों में लौटा वे अर्थ। मुझे वापस कर दे मेरा प्रेम, मेरा वसन्त, मेरा सूर्योदय, मेरे फूल, मेरी सुगन्ध, मैं देखना चाहता हूँ सब कुछ, फिर से स्वच्छ"।

वे विष बुझे मनों में शहद घोलना चाहते थे। अँधेरे रास्तों पर जलते चिराग रखना चाहते थे। लेकिन स्मृतियाँ अब सुखद नहीं रही थीं। लहू की हर बूंद से असहायता टपक रही थी। घर, नदी, पेड़ों को ही उन्होंने काँपते नहीं देखा, उन्मादों का कंपन भी महसूस किया। झुलसे हुए घरों, सन्नाटों और षड्यंत्रों के समय का लहूलुहान वर्तमान और अनिश्चित भविष्य देखा और देखे रिसते हुए घाव छिपाए जीवन जीते लोग। वे कहते हैं, शहर में एक पागल ऊँट घुस आया है, जिसके आतंक से उपजा स्याह डर रोम–रोम में ज़हर की तरह फैलता जा रहा है। हालात से बेचैन मजबूर साहब ने शहर की बदली फिज़ा और उससे प्रभावित लोगों की व्यथा को स्वर दिया। वादी में रहते दोस्तों को भी चुप और गूंगा होते देखा, क्योंकि वहां आज आवाज़ निकालना गुनाह है। लोग अब जूते पैरो में नहीं, सिर पर रखे घूम रहे थे। कौव्वे शहर में दिखाई नहीं देते, क्योंकि उनको भात खिलाने वाले शहर से कूच कर गए हैं। लेकिन काले कौव्वे की तरह ही शहर में सब कुछ स्याह लग रहा था। पागल ऊँट कुछ लोगों को पागल बना गया और वे उसे स्वतंत्रता का प्रतीक मानने लगे। मजबूर साहब इस पागलपन के फैलाव से त्रस्त रहें। दो वर्ष पहले वे अपने बेटे नागराज के पास दिल्ली आए थे। शरीर ठीक नहीं रहता था, कुछ डॉक्टरों से सलाह लेना चाहते थे। फोन पर मुझसे बात की तो मैं और डॉ. विशिन उनसे मिलने द्वारका गए। हमारे विशेष आग्रह पर उन्होंने हमें कई कविताएँ सुनाई। 'कथगोर' से लेकर 'दज़्वुनि कोसम' और ताज़ा रची कविताएँ। कविता उनके लिए अंतःकरण की आवाज़ थी। उनमें उनका जीवन दर्शन, व्यवस्था का विद्रूप और मनुष्य की चिन्ता थी। उनके काव्य–पाठ का ढंग भी सम्मोहित करने वाला था। विस्थापन की पीड़ा को जो कलात्मक अभिव्यक्ति उन्होंने दी थी वह मर्म को छूने वाली थी। हम उनके दुख के सहभागी थे। देर तक उनको सुनते रहे। उनकी कविताओं में कश्मीरी भाषा का लावण्य और भाव संवेदन का घनत्व इतना अभिभूत करने वाला था, कि उन्हें घंटों सुनते रहे पर मन तृप्त नहीं हुआ। मेरे वैज्ञानिक पति उनकी कविता के सम्मोहन से इतने भाव विभोर हुए कि वहाँ से उठने के लिए कई बार टोकना पड़ा। उनकी बहूरानी इस बीच तीन बार हमें चाय पिला गई– कहवा, शीरचाय और लिपटन भी। मजबूर साहब बीच–बीच में चाय के घूँट भरते रहे और काव्य धारा से हमें भिगोते रहे। अद्‌भुत था उन्हें सुनना। मजबूर साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व को जानने का एक नायाब मौका भी। सुल्तान जैनुलाबदीन, 'बडशाह' के नाम वाले ज़ैनपुरा के वासी मजबूर साहब शायद मन ही मन बडशाह के लौटने का इंतजार करते रहे, उस बडशाह का, जिसने बेघर–बेरोज़गार हुए निष्कासित पंडितों को ससम्मान वादी में वापस बुला कर फिर से फलने–फूलने का मौका दिया था। और अपने पिता सिकन्दर के पापों का प्रायश्चित किया था। कश्मीर का इतिहास तो पुनरावृत्तियों का इतिहास है, क्या अपने स्वतंत्र राष्ट्र में पुरखों की धरती से उखड़े हुए कश्मीरी पंडित फिर से अपने घरों में आबाद नहीं हो सकते। लेकिन अभी तक कोई बडशाह नहीं जन्मा। हम सभी विस्थापितों की तरह मजबूर साहब भी उम्मीद का दामन थामे रहे, तमाम नाउम्मीदों के बावजूद शब्दों को अर्थ देते रहे, उनसे अरदास करते रहे "ऐ मेरे शब्दों मुक्त हो जाओ अपनी लघु सीमाओं से, और मेरी कैद से, और मेरी पीड़ा से कश्मीरी काव्य को समृद्ध विरासत सौंप कर मजबूर साहब अपने हमवतनों की पीड़ा का साझा कर शायद मुक्त हो गए, लेकिन हमारा साहित्य–संसार उनके ऋण से उऋण नहीं हो पाया। उन्हें अपने पाठकों का भरपूर प्यार मिला, कुछ संस्थाओं ने भी उनके योगदान को समझ उन्हें सम्मानित किया, पर बड़ी साहित्य–संस्थाओं ने उन्हें नज़र अंदाज़ ही किया। एक रचनाकार और

शेष पृष्ठ 40 पर......

गोपाल सिंह नेपाली



कवि की जन्म शताब्दी पर विशेष

भारत का कश्मीर है

सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है
रावी–तवी का तट हमको प्यारा
उतना जितना गंगा–यमुना का तीर है

था और नहीं छुटकारा रे
रह गये हमारे हिस्से में
मंदिर–मस्जिद–गुरुद्वारे रे

तुम लड़े मगर कश्मीर मिला हमसे
जैसी नीयत होती वैसी तकदीर है

सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

पहले घर–घर बरबाद किये
अब घूम रहे फरियाद लिये
किस मुंह से रोते जाते हो
खुद झगड़े कर बुनियाद लिये
तुम रोज हवाला जिसका देते हो
वह कब न पुरानी टूट चुकी जंजीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

पूरा हुआ न मनसूबा है
दिल तेरा डूबा–डूबा है
पर इतनी–सी तो बात रही
कश्मीर हिन्द का सूबा है
अब चाहे दस घंटे बोले जाओ
दुनिया समझेगी पागल की तकदीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

यह हिन्द मांद है शेरों की
तुर्बत है यहीं लुटेरों की
लड़ते ही लड़ो, लड़ाई को
मत समझो मगर बटेरों की
तुम भूल रहे मतलब की आंधी में
घर की रक्षा को तिनका भी शहतीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

थे लूट मचा कर भाग रहे
अब हार गए तो जाग रहे
अपने घर समता है चुनाव
औरों का जनमत मांग रहे
उसका जनमत अब और वहां लोगे
जो पत्थर पर किस्मत की खुदी लकीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

लो जनमत पाकिस्तानी से
यह क्यों है दूर रवानी से
पूछो कि उसे क्या लेना है
औरों के दाना–पानी से
कश्मीर भुला दो, घर अपना देखो
यह चमन शहीदों की अपनी जागीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

सरकार तुम्हारी देशी है
फिर क्यों दरबार विदेशी है
हथियार विदेशी ले उधार
कहते हो जंग स्वदेशी है

यह हाल तुम्हारा देख रहा जब से
हर हिन्दुस्तानी की आंखों में नीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

जब घुस न सके तुम चोरी से
तो आते हो बरजोरी से
यह भारत है जो टरे न पथ से
डरे न सीनाजोरी से
हर पाकिस्तानी इतना तो जाने
हर हिन्दुस्तानी नेहरू की तस्वीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

झूमा न करो बस जाम पर
कुछ गौर करो अन्जाम पर
अब नहीं बंटेंगे भारत के
इन्सान धर्म के नाम पर
मजहब का नाता घर तक ही रहता
भारत की तो सर्वस्व पराई पीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

ओ भाई पाकिस्तान के
मत बैर करो यों जान के
अब रोज पड़ोसी हो तुम तो
जन्में तब हिन्दुस्तान के
किस्मत ने जब दो देश मिलाये हैं
मिलकर रहना तदबीरों की तदबीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है

पर अब न समय पर तू जागे
फिर कहीं दूसरा रण मांगे
तो भारत की जनता होगी
कश्मीरी बच्चों के आगे
यह बर्फ नहीं कश्मीरी चोटी पर
भारत की नंगी चमक रही शमशीर है
सर झुका पड़ोसी, विदेशियो सुन लो
आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है।।



-डॉ. महाराज कृष्ण भरत

समय हमारी भाषा है

उठो!
मेरी जन्मभूमि के कल्हणों!
वतन को पीड़ाओं से मुक्त करने वाले
समय के 'मुक्तापीड़ो'
यही समय है अपनी मातृभाषा से
जन्मभूमि के स्वाद को बहाल करने
हम दायरों / दीवारों को तोड़कर
बंद कमरों से बाहर झाँकें
समय हमारी भाषा है
हकला रही है
भाषा में सांस भर दो
'श्री' हीन हो चुके नगर को
श्रीयुक्त कर दो।
यह समय पीड़ाओं को अग्नि कणों में
बदलने का है
सपने जगाने का है
इतिहास के लिए
आओ
शहीदों की तिथियों से
अपने माथे पर तिलक कर दें
जलावतनी का लिबास उतार फेंकें
हम लिख दें
चिनार के पेड़ों पर
अपनी वापसी का इतिहास।।

(27 दिसंबर 2010 को जम्मू में चेतना दिवस के अवसर पर दिए गए भाषण का एक अंश)

रजनी पाथरे राज़दान



कहानी

धुंधलके का सूरज

जम्मू पहुंचते ही डॉ. गुलाम रसूल भट ने दीपक को अस्पताल में दाखिल करवा दिया और उसके परिवार को श्रीरघुनाथ मंदिर की धर्मशाला में ठहरा कर वह पुनः रात के अंधेरे में घाटी की ओर चल पड़ा। वापिस लौटने से पहले दीपक के पिताने उसे गले से लगा कर बरसती आँखों से कहा था– "कौन कहता है, इन्सानियत मर गई है।" छप्–छप्–छप् की आवाज़ ने रमा को वर्तमान में ला खड़ा किया।

रमा आज जब तवी के तट पर मिट्टी का घड़ा भरने आई तो उसके जल पर तैरते हुए कुछ अखरोट के छिलके रमा के घड़े में उतर आए। जब भरे घड़े से छिलके बाहर निकालते उसकी आँखों के सामने अपने वैवाहिक जीवन की पहली हैरथ (शिवरात्री) उभरर आई। शायद इसलिए कि अखरोट और शिवरात्री एक दूसरे के पूरक जो ठहरे। उस दिन कितनी उत्सुकता, कितनी कामनाएँ लिए रमा अपने ससुराल पहुँची थी।

वधु के रूप में यह उसकी पहली शिवरात्री थी। माँ ने उसके पाँच हज़ार एक अखरोट, पाँच दर्जन रोगनी नान, एक पंसेरी सेंधा नमक व एक सौ ठक्यावन रुपये 'अतगध' (शुभ शकुन) के रूप में भिजवाए थे।

माँ ने चलते समय रमा के बटुवे में सौ रुपए की रेजगारी डाली और उसके हाथ में पांच सौ एक, चिकनी कौड़ियों से भरी लाल मखमली थैली थमाते हुए कहा था – "बड़ों का लिहाज रखते हुए उनसे कौड़ियाँ खेलना 1 बड़ों से खेल में हारने से उनका मान रहता है। छोटों से भले ही चुहल करो। और, हाँ खाई के पाँच कूजे व दही की कठौती लेकर असलम तेरे पीछे पीछे चलेगा। ससुराल पहुँच कर कूजे और दही सब से पहले बैन्यजी (सास)" के सामने रखवाना।

मैके का द्वारा लांघते ही उसके कानों में माँ की आखिरी हिदायत टकराई.... सिर से पल्लू गिरने मत देना, वह मैका नही, तेरी ससुराल है।

रमा ने तुनक कर पीछे मुड़ माँ को देखना चाहा, तभी माँ की शरारत भरी मुद्रा देख वह हँस पड़ी– "ओह काकनी! कितनी बार पललू की याद दिलातीररहोगी मैं ते वहाँ साड़ी का पल्लू दाँतों से पकड़े रहती हूँ। डरती हूँ कहीं पल्लू सिर से सरकगया तो तेरा हाथ धप्प से सिर पर आ धमकेगा" "हट मुई" माँ ने अपनी गीती आँखें पोंछते हुए पास खड़े असलम से कहा– "ना बेटा, ले जा बहिन को मुहूर्त निकला जा रहा है।"

रमा के ससुराल में कदम रखते ही मकान का तिमंज़िली लकड़ी की सीढ़ियों की डबडबाहट से गूंज उठा। सारा परिवारनवेली दुल्हन का स्वागत करने को बेताब एक दूसरे को सीढ़ियो निचली मंज़िल पर बैन्यजी ने सब को रोकते हुए कहाः– अरे–रे रुको, पहले मुझे बहू की 'आलथ' (आरती) तो उतारने दो, बस! इसके बादबहू को गले लगाने और मस्तक चूमने की होड़ सी लग गई दो भाइयों का सयुक्त परिवार, उस पर चचेरे ननंद देवरों की गहमा गहमी, ऐसे सुखद वातावरण में रमा मैंके का विछोह भूल जाती। दोपहर के भोजन के बाद कौड़ियों की बैठक जम गई। पहले घर के बड़ों में दाँव खेले। रमा माँ की ताकीद भूली न थी इसलिए जानबूझ कर हारती रही। जब छोटों की बारी आई तो बड़ों ने बहू से जीते पैसे बुगने कर उसकी गोद में डाल दिए। बस फिर क्या था मुकाबला बराबरी पर तुलने लगा। चारों ओर कहकहोंने पूरे घर को आनंद–विभोर कर डाला। इस प्रकार शिवरात्री के पाँच दिवस कब बीते रमा को पता न चला। रमा के पिता अमर सिंह कॉलेज के अवकाश–प्राप्त प्राचार्य थे। उनकी इकलौती बेटी रमा उसी कॉलेज की छात्रा थी। बी.ए. पास करते ही उसके पिता ने अपने मित्र एवं सहयोगी निरंजन नाथ के इकलौते बेटे डॉ. दीपक के साथ उसका विवाह कर दिया। दीपक श्रीनगर के उपनगर 'सौवुर' के अस्पताल में मुख्य शल्य चिकित्सक के पद परनियुक्त था।

रमा को मैका 'गावकदल' की नई सड़क पर था तथा ससुराल टेलीफोन एक्सचेंज के पास शारिका मोहल्ले के पास में! सो रमा के लिए यह अन्तर कोई विशेष महत्व नहीं रखता था। वह जब भी कहती मैकेवालों से मिलने चली जाती। परिवार की पहली बहू होने के कारण वह सब की लाड़ली तो थी ही पति भी

उसके भोले व चंचल स्वभाव पर जान छिड़कता था। बहार विदा हो चुकी थी और घाटी के चिनार पतझड़ की आहट पर जलने लगे थे तभी एक शाम जब दीपक अस्पताल की ड्यूटी कम कर घर लौटा तो उसके चेहरे का तनाव परिवार से छिप ने सका। माता–पिता के पूछने पर "थक गया हूँ", कह कर दीपक अपने कमरे में जाकर लेट गया। रमा जब उसके लिए कहवा लेकर कुलचा लेकर कमरे में आई तो वह लेटा हुा शून्य ..... से छत की सड़िया को निहार रहा था।

रमा ने उसके हाथ में कहवा थमाते हुए पूछा "बात क्या है? ...इस......." कुछ नहीं सब ठीक है .... कहवे की चुस्कियाँ लेने लगा। रमा ने पति का यह खोया–खोया विचार ग्रस्त रूप पहले कभी देखा न था पर वह अधिक पूछने का सहस न कर पाई।

दूसरे दिन शाम को घर लौटने पर दीपक ने पिता को सूचना दी कि 'सौवुर' में कल रात को कुछ अज्ञात बुदूक धारियों ने पंडितों के मोहल्ले में आग लगा दी और चार गम्भीर रूप से घायल व्यक्तियों को पुलिस अस्पताल ले आई थी। सुर कर पिता का माथा ठनका बोले– "दीपक! बहार के दिनों में जो शहर का बदलता रूप और दबी ज़बान की अफवाहें सुनी थीं, तुमने उन पर विश्वास नहीं किया था ना! देखा, मेरा हंदाज़ आखिर सही निकला।"

इस घटना को बीते अभी एक सप्ताह भी गुज़रा न था कि पंडितों के दरवाजों पर रात के अंधेरे में पर्चे चिपकाए गए "काफिरो! जान की खैर चाहते हो तो घाटी दोड़ दो........वरना पाकिस्तार ज़िंदाबाद।"

इस पर भी पंडितों ने जब कोई प्रतिक्रिया नहीं जताई तो दरवाज़ों पर 'हिट लिस्ट' चिपकाए गए। और फिर आतंकवादियों का अगला कदम पंडितों के मकान जलाने से शुरू हुआ जिसकी लपेट में उदारवादी मुसलमान–पड़ोसी भी आ गए। उस तरह कई मोहल्लों में रात के अंधेरे मे मकान आतिश–बाज़ियों के समान यूँ–यूँ जल उठे।

धीरे–धीरे शहर में भय और आतंक का साम्राज्य छा गया। चारों ओर भगदड़ मच गई लोग रात के अंधेरे में अपनी जान बचा कर जम्मू की ओर भागने लगे। इतना सब होने पर भी दीपक और उसके पिता का मानवता पर अडिग विश्वास था। पिता का कहना था कि कुछ सिर–फिरे लोगों की वजह से हम अपना वतन छोड़ें। पीढ़ियों से हम हिन्दू मुसलमान एक ही मोहल्ले में साथ–साथ रहते आए है और हमेशा साथ–साथ रहेंगे। पुत्र भी इसी आस्था पर अस्पताल में घायलों और बीमारो की सेवा में लगा रहता।

दीपक के चाचा अगस्त में ही हर साल की तरह अपने बेटे के पास सर्दियाँ बिताने चेन्नई चले गए थे। इधर वादी की पहाड़ियाँ ताज़ी बर्फ से अपना तन ढाँकन लगीं उधर आधी रात के अंधेरे में हिट लिस्ट पर चढ़े पडित घरों से युवक गायब होने लगे और उनकी लाशें जेहलम या उसके आस–पास नालों में ....अल्लाहो अगबर के नारे गूंजने लगे। आतंकवादी भयभीत .... के घरों में छिपने लगे। बन्दूके की नली ने उनके होंठ सी दिए थे। सुरक्षाकर्मी शहर की पुरानी तंग सर्मीली गलियों से परेशान थे। उन्हीं अंधेरी गलियों का सहारा लेकर आतंकवादी आगज़नी ...... हत्याओं के बाद अंधेरों में गुम हो जाते। दीपक के घरवालों की सांसें तब तक गले में अटकी रहती जब तक शाम को वह अस्पताल की गाड़ी में घर न पहुँचता। अब उसके पिता भी मन से कमज़ोर पड़ने लगे थे पर बाहर से अपनी पत्नी और बहू को हिम्मत बढ़ाते रहते– "अरे इन्सानियत कभी मर सकती है भला। यह नारेबाज़ी तो सिर्फ हाथी के दाँत हैं बस! "

मासूम रमा ऐसे दिलासों से आइबस्त होकर घर–काम में मन लगाए रहती। पर, दीपक की माँ ने अपने जीवन के साठ वसंत देखे थे। वह पति के स्वभाव से परिचित थी। उसके पास सिवा खामोश रहने के कोई और चारा नथा।

उस दिन सोमवार था दीपक की माँ ने दिनभर दूध के सिवा कुछ भी न लिया था। बहू के बार–बार आग्रह करने पर उसने कह दिया कि बेटे के घर लौटने के बाद ही वह उपवास छोड़ेगी।

पहाड़ों मे सर्दियों के दिन पलक झपकते ही ढल जाते हैं। छः बज चुके थे। सड़कों पर धीरे धीरे भय तथा अंधकार का सन्नाटा छाने लगा था। वैसे दीपक शाम के साढ़े पाँच बजे तक घर लौअ आता था। पर आज उसकी गाड़ी नहीं आई तो रमा ने सोचा– आज उन्हें कोई गम्भीर ऑपरेशन करना पड़ा होगा पर जब घड़ी की सूइयों ने नौ का आँकड़ा पार किया तब उसने ससुर के कमरे में झाँका ससुर अपने कमरे में चहल कदमी कर रहे थे "पापाजी....." "हा बहू मैं अस्पताल कई बार फोन लगा चुका हूँ, पर लग नहीं रहा लगता है वहा का एक्सचेंज बिगड़ गया है .... डरने की कोई बात नहीं......दीपक आ जाएगा....." रमा को ससुर के अंतिम शब्द खाखली झंकार के समान सुनाई दिए।

घर के तीनों प्राणी घड़ी की सूइयों को एकटक देख रहे थे। घर में खामोशी में घड़ी की टिकटिक घंटानाद से कुछ कम नहीं लग रही थी। बाहर चारों ओर निशब्द गिरते हुए बर्फ के गाले वावरण को जैसे सफेद कफ़न पहना रहे थे।

घड़ी ने जब रात का एक बजा दिया था। सहसा दीपक के पिता ने बैठ कर खूंटी पर से अपना ओवरकोट उतार कर पहना........ अभी तीन ही सीढ़ियाँ उतरे थे कि

किसी ने मकान के मुख्य द्वार की कुंडी खटखटाई। दीपक के पिता ने पीछे मुड़कर खामोश रहने का इशारा किया व मुख्य द्वारा की ओर मुड़े। कुछ ही पल में वे दीपक के डॉ. मित्र एवं सहयोगी गुलाम रसूल भट के साथ लौटे। रमा की आँखें फटी की फटी रह गईं डॉ. भट ने उसके पति को अपने कंधे पर उठा रखा था। पति के कमड़े खून से भीगे हुए थे। उसकी दाहिनी बाँह बेजान हो कंधे से लटक रही थी। इसके पहले कि रमा के मुँह से चीख निकले। भटने आदेशपूर्ण स्वर में कहा– "किसी के मुँह से आवाज़ न निकले। जल्दी से गर्म पानी लाइए। मैं दीपक की बाँह की ड्रेसिंग करूंगा। सक्त बहुत कम है। मैंने इसे हल्की बेहोशी की दवा पिला दी है।" मुत्र की दारूण दशा देख कर माँ कपड़ा मुँह में ठूँस कर निःशब्द रोग जा रही थी।

पिता तथा रमा ने भट के आदेशों का चुपचाप पालन किया। भट ने दीपक का स्पंज कर असके कपड़े बदले फिर होश में लाकर उसे गर्म बादामी कहवा पिलाया। दीपक पीड़ा में मुस्करा कर अपने परिवार को हौसला देता रहा।

पिता ने भट से पूछा– "यह सब कैसे और क्यों हुआ?" भट ने अपनी गीली आँखें पोंछ दीपक की माँ की ओर देखकर भर्सए स्वर में कहा– "मइजी! मैं आपके बेटे की हिम्मत को सलाम करता हूँ। दीपक ने शायद आपको बताया नहीं होगा कि कई दिनों से आतंकवादी उससे अपने घायल साथियों का इलाज करने के लिए मदद माँग रहे थे। वे कई दिनों से लालच और धमकियों से इसे काबू करना चाहते थे। पर वाह रे मेरे शेर! यह टस से मस न हुआ! आज जब वह ड्यूटी खत्म कर घर लौट रहा था तो आतंकवादियों ने इस धर–दबोचा। जिस हाथ से वह लोगों के दुःख दूर करता था उसी हाथ को ज़ालिमों ने अपने नुकीले बूटों से कुचलने के बाद इस सड़क के किनारे फेंक कर चले गए। मेरा नसीब कि मैं देर से ड्यूटी खत्म कर जब घर लौट रहा था तो इसकी कराह ने मुझे इस तक पहुँचाया। उठिए वक्त कम है। मेरा यार 'हिट लिस्ट' पर है। मेरी ऐम्बैसिडर कार नीचे तैयार खड़ी हैं, मैं खुद आप लोगों को रात के अंधेरे में घाटी पार करा दूंगा।"

जम्मू पहुंचते ही डॉ. गुलाम रसूल भट ने दीपक को अस्पताल में दाखिल करवा दिया और उसके परिवार को श्रीरघुनाथ मंदिर की धर्मशाला में ठहरा कर वह पुनः रात के अंधेरे में घाटी की ओर चल पड़ा। वापिस लौटने से पहले दीपक के पिताने उसे गले से लगा कर बरसती आँखों से कहा था–

"कौन कहता है, इन्सानियत मर गई है।" छप्–छप्–छप् की आवाज़ ने रमा को वर्तमान में ला खड़ा किया :–

सामने तवी नदी के शीतल जल में दो किशोर–मित्र एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ मे तेज़ी से जल में तैर रहे थे। ✠

स्मृत्याँजलि

शान्ता कौल का देहावसान


शान्ता कौल

कश्मीर की पहली महिला उद्घोषिका–प्रसारिका जो आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र में स्थापना काल से ही जुड़ी थीं का अपने पुणे स्थित आवास में देहान्त हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व शान्ता जी को कश्मीरी रंगमंच पर अभिनय करने वाली पहली महिला अभिनेत्री का श्रेय भी जाता है। उनसे पहले पुरुष अभिनेता ही महिला वेशभूषा धारण कर अभिनय करते थे।

प्रसारण और अभिनय के अतिरिक्त उनका कहानी लेखन को भी उल्लेखनीय योगदान है। तीन वर्ष पूर्व उनका कहानी संग्रह–'अंधेरी रात का सूरज' प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका हमारे प्रधान संम्पादक प्रो. चमन लाल सप्रू और प्रस्तावना राज्य की साहित्य कला एवं भाषा अकादमी के पूर्व सचिव रमेश मेहता ने लिखी। कथा संग्रह का लोकार्पण श्रीनगर में हुआ।

शान्ता जी के पति श्री प्राणकिशोर स्वयं एक कुशल लेखक और फिल्मकार हैं। हम शान्ता जी के देहावसान पर उनकी आत्मा की चिर शान्ति के लिए बाबा अमरनाथ से प्रार्थना करते है। हिन्दी कश्मीरी संगम ने शान्ता जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें कश्मीर के सांस्कृतिक मोर्चे की प्रमुख नायिका के रूप में याद किया।

डॉ. बीना बुदकी



कहानी

अन्तर्मन

ननसी के चेहरे पर खुशी थी न गम था। वह मन ही मन सोच रही थी कि यहां टेंट की चार दीवार, वहां ईट पत्थर की बनी दीवारें.....उसी कमरें में ही तो नहाना धोना, खाना सभी कुछ करना होगा..... पक्का मकान मिले या नया टेंट, कश्मीरी शरणार्थी वापस जायें या नहीं, ननसी सिर्फ इसी प्रश्न में उलझी रहती कि मेरा पंपोश मेरा हो सकेगा या नहीं।

अन्तर्मन की औरत कहती – होगा, जरूर होगा।

टेंट के छिद्रों से टपकता पानी, सांय करती ठण्डीहवा बेचारी ननसी कभी सामान इधर रखती तो कभी उधर, रात होते होते बारिश थम तो गई पर टेंट में बैठने की जगह भी न बची थी। हर तरफ पानी ही पानी था। ननसी की समझ में नहीं आ रहा था के बेटी कुसुमा को कहाँ सुलाए।

तभी बड़ी बेटी जिगा बोली, माँ दोनों सन्दूकों को जोड़कर इन्हीं पर सोते हैं।

ननसी रूखा सूखा, बचा खुचा खाकर, सिमटते सिकुड़ते दोनों बेटियों के साथ सन्दूक पर लेट गई पर ननसी की आँखों में नींद कहाँ? वह टुकुर टुकुर टेंट के छिद्रों को देख रहीं थी। अतीत के 15 साल उसकी आँखों के आगे चलचित्र की तरह घूमने लगे।

ननसी दुल्हन बनकर कश्मीर में महारागंज की हवेली में आई थी। हवेली की सजावट, कई दिनों तब चलती दासतों के दौर एवं कहकहों की गूंज को याद करके वह आज भी रोमांचित हो उठती। पति पंपोश को पाकर दुनिया जहान की खुशी पा ली थी। ससुराल में सभी का प्यार और फिर जिगा व कुसुमादो बेटियों को पाकर सब इच्छाएं पूर्ण हो गईं। जिंदगी में न कोई दर्द था न घुटन, पर एकाएक कश्मीर घाटी में आतंकवाद के शोले भड़क उठे। चारों और आतंकवाद का साम्राज्य छा गया था। कोई किसी खबर की खबर नहीं ले रहा था। सभी अपने अपने परिवार को लेकर, किसी तरह जान बचाकर, रातों रात भागने का प्रयत्न कर रहे थे। अपने भरे पूरे घर छोड़कर सभी अंजान मंजिल की ओर भाग रहे थे। पंपोश ने भी पत्नी एंव बेटियों के साथ पलायन कर जम्मू में पनाह ली। जम्मू आकर कितनी जद्दोजहद के बाद टेंट मिला था सरकार की ओर से हजार रुपये हर पहीने सहायता के तौर पर मिलने लगे। जिससे तन ढकने व पेट की भूख मिटाने के लिए जुगाड़ बन गया। टेंट मे गर्मियों की लू और जाड़ों की सर्दी बार बार कश्मीर की याद दिलाती। कश्मीर में गर्मियों की हवा मुर्दे में भी प्राण फूक देती। चिनार की ठण्डी हवा मदमस्त कर देती। जाड़ों में कांगड़ी लिए खिड़की के पास बैठ कर बर्फ के नजारे देखते, पर यहाँ जम्मू में हालांकि खुले मैदान मे सिर छिपाने के लिए सरकार द्वारा दिया गया टेंट थ पर कभी हा के झोंके टेंट की रस्सियों को तोड़ देते तो कभी मूसलाधर बारिश से टेंट तार हो जाता।

ननसी पति व बच्चों को देखकर सब दुख भूल जाती पर कभी कभी जिगा की खामोशी दिल चीर कर रख देती। न पढ़ने की जगह न सोने की। यहाँ तक कि रात होने के बाद टेंट के बाहर नहाती। कभी कभी जिगा लू के थेपेड़ों से तंग आकर दिन में नहाने की जिद करती, पर?

तब ननसी बड़े प्यार से समझाती, बेटी अब तुम बड़ी हो गयी हो। 'यूं खूल में नहाना अब शर्म की बात है।'

जिगा रोने लगती, फिर बोलती, चलो वापस अपने घर कश्मीर हम क्यों नहीं जा सकते वापस अपने घर?

युह सुनकर ननसी विचलित हो उठती, वह भी जिगा की चिल्लाहट के साथ साथ रोने लगती। तब कुसुम माँ को प्यार से चुप कराती। जिगा की इस झुंझलाहट के पीछे पिता का दर्द भी था।

ननसी बच्चों को तो ज्यूं त्यूं सुलाती पर खुद रातें करवट बदल बदलकर काटती और उस रात को उसकी दनदं हमेशा के लिए खत्म हो गई जब पंपोश ने उसे कहा, 'ननसी में तुमसे और बच्चों से बेहद प्यार करता हूँ पर रूप मेरी जिन्दगी में फिर आ गई है। उसने अब तक शादी नहीं की है। मैं रात को फैक्ट्री के बजाए उसके घर में ोता हूँ... ननसी मुझ माफ़ करना.... मैं तुमसे झूठ नहीं बोल सकता।'

ननसी को यह सुनकर ऐसा लगता मानों वक्त रुक गया हो पर यह हकीकत थी।

विवाहपूर्व रूपा पंपोश की प्रेमिका थी। दोनों विवाह के सम्बन्ध मे जुड़ना चाहते थे, पर रूपा का बाप उसी कमाई से वंचित नहीं होना चाहता था वह उसे आजीवन कुंआरी रखना चाहता था ताकि उसका सहारा उससे न छिन सकें। पंपोश की माँ ने लाख मिन्नते की, हाथ पांव जोड़े पर रूपा का बाप टस से मस न हुआ। उसे बेटी से ज्यादा अपनी फिक्र थी।

एक दिन अचानक सुबह सुबह रूपा का बाप बहाड़ें मार कर रोने लगा। आग की तरह पूरे मोहल्ले में यह

बात फैल गई की रूप कहीं भाग गई। पर पंपोश के वहीं होने पर सभी ने सोचा कि रूपा ने अपनी जान दे दी है।

मकान बेचकर रूपा का बाप भी वहाँ से चला गया। दरअसल रूपा के पिता ने उसको जम्मू में चाचा के यहाँ बहाने से पहुँचा कर कैद कर दिया था। पिता के आने पर भी चाचा दिन रात साये की तरह रूपा के पीछे लगा रहता। कई महीनों बाद मौका पाकर रूपा कश्मीर भाग गई। वहाँ पहुँचकर जब उसे पता चता कि पंपोश की शादी दो दिन पहले ही हो गई वह बेहद दुखी मन से आखिरी बार पंपोश की मां के पास गई।

पंपोश की मां ने रो रो कर सारा हाल उसे बताया कि उसके पिता ने क्या क्या कहा, पंपोश अब भी उसे नहीं भुला पाया है सुनकर उसे खुशी भी हुई और दुख भी हुआ। मां पंपोश को रूपा के आने की खबर सुनाने ऊपर कमरे में गई, किन्तु इसी बीच रूपा वहाँ से चली गई।

ननसी ने पंपोश के हर दुख में उसका साथ निभाया। कभी भी रूपा को लेकर विवाद नहीं किया, उसे पूरा विश्वास था कि वह प्यार से एक दिन पंपोश को जीत लेगी, अपना बना लेगी। धीरे–धीरे दो बेटियों, जिगाव कुसुमा के आगमन के पश्चात् पंपोश भी बदलने लगा। लेकिन टेंट में आकर जगह की तंगी के कारण पंपोश कभी बाहर तो कभी बगल के टेंट में रहने वाले दीनानाथ के साथ सो जाता। उसकी रात की तड़प का भी उसे अंदाजा था पर बेटियों एवं खुले टेंट ने कई अंकुश लगा दिये थे। पंपोश कभी कभी मजाक में कह उठता ननसी लगता है अब कोई ढूंढ़नी ही पड़ेगी.... शरीर तो शरणार्थी नहीं होता।

ननसी को कभी खुद पर तो कभी सरकार पर गुस्सा आता, जिसके कारण उन्हें भरे पूरे घर को छोड़कर टेंट मे शरण लेनी पड़ी थी। वह सोचती कि शर्म हया छोड़ कर कैसे पत्नी होने का कर्त्तव्य निभाए।

अक्सर पंपोश चिढ़ता, बिना बात के लड़ाई करता। एक दिन झुंझला कर ननसी ने कह ही दिया, कहीं अतिरिक्त समय मे नौकरी देख लो, मन भी लगा रहेगा और दो पैसे भी आ जाएगें।

पंपोश शरीर की विडम्बना से असन्तुष्ट मानसिक क्लेश लिए भटकता रहता। एक दिन अचानक उसे वहाँ रूपा दिखाई दी। भागता हुआ उसके पास पहुँचा। रूपा भी हैरान सी एकटक उसे देखती रही। आस पास की गाड़ियों की आवाज ने उसकी तन्द्रा को भंग किया। फिर रूपा पंपोश को घर ले गई। वहां रूपा ने पंपोश को बताया कि एक दिन मैं तुम्हारे घर गई थी, वहां पताचला कि तुम शादी कर चुके हो, सा वापस चली आई...... पिताजी भी नहीं रहे, अब यही घर में छोटा स्कूल व सिलाई सेंटर खोला है। जीने के लिए कुछ तो करना था।

उसके बाद रूपा स्कूल के कुछ कार्य पंपोश को सौंपने लगी। पंपोश और रूपा का प्यार फिर जाग गया। गृहस्थी से असन्तुष्ट पंपोश पिछले प्यार का वास्ता देकर रूपा की बाहों में समा गया। रूपा आखिर स्त्री ही तो थी, जीनके ललक सुनहरे सपने, प्यार, सब फिर से खिल उठे, प रूपा के अन्दर का चोर ननसी का सामना करने से कतराता।

ननसी जब भी पंपोश को देखती, रूपा की धुंधली तस्वीर उसके साथ दिखाई देती। उसे पंपोश के शरीर की गंध से दूसरी बू का एहसास होता। कई बार सोचती कि पंपोश को ऐसा कहेगी, वैसा कहेगी, कहीं भ्गा देगी, पर उसे देख्कर खामोश हो जाती। मन मन सोचने लगी, क्या जरूरत है कुछ कहने की? खींचतान कर यदि रूपा से पंपोश को ले भी आई तो क्या फायदा, वह अगले दिन फिर चला जाएगा.......अपने विश्वास को कमजोर मत होने दो, आखिर पत्नी तो तुम ही हो रूपा तो नहीं।

अन्तर्मन में उठते आवेगों में ननसी घंटो बिता देती कई दिन की कशमकश के बाद आखिर ननसी ने तय किया क जिगा, कुसुमा की शादी हो जाए, फिर पंपोश का दिल जहां चाहे रहे।

अक्सर सुनन को मिलता कि शरणार्थियों को वापस कश्मीर भेजा जाएगा। ननसी के दिल में टीस भी उठती। घंटो सोच में डूबी रहती कि आखिर मैं किस घर जाऊँ.....पंपोश बट चुका है, मैं अकेले कहां जाऊं।

हर टेंट मे रहने वाले का चेहरा बारी बारी से नजरों के सामने घूमने लगता। सिर्फ कुछ चेहरो को छोड़कर, हर चेहरा उदास, मायूस सा नजर आता .... सरकार से मिला आश्रय, टेंट जिसमें खाना, उठना, नहाना, सभी कुछ था पर जीवन का जरूरी सच नहीं था।

उधर रूपा अपने पंपोश को पाकर सब कुछ भूलना चाहती थी। कई बार दबे होठों से उसने पंपोश से एक साथ रहने की बात कही भी पर पंपोश ननसी की मानसिकता को अच्छी तरह जानता था कि वह जिगा और कुसुमा की शादी तक ऐसा प्रस्ताव कभी मंजूर नहीं करेगी।

जिगा न जाने कब से मां को बुला रहीं थी। मां.... मां....सुनकर ननसी की तन्द्रा टूटी, जिगा चिल्ला रही थी, मां तुमने सुना अब सरकार टेंट की जगह क्वार्टर दे रही है......अब हम हम कब जायेंगे उस क्वार्टर में?

ननसी के चेहरे पर खुशी थी न गम था। वह मन ही मन सोच रही थी कि यहां टेंट की चार दीवार, वहां ईट पत्थर की बनी दीवारें.....उसी कमरें में ही तो नहाना धोना, खाना सभी कुछ करना होगा..... पक्का मकान मिले या टेंट नया, कश्मीरी शरणार्थी वापस जायें या नहीं ननसी सिर्फ इसी प्रश्न में उलझी रहती कि मेरा पंपोश मेरा हो सकेगा या नहीं। अन्तर्मन की औरत कहती होगा, जरूर होगा। ✠

निदा नवाज़



मैंने धीरे से उत्तर दिया, 'तुम चुप नहीं रह सकती। तुम्हें नहीं मालूम हालात कितने खराब हैं। दरवाजे पर धक्के की आवाज मैंने स्वयं सुनी। दरवाजे पर आखिर कोई भूत-प्रेत तो धक्का नहीं देता।' मुझे लग रहा है कि कोई बाहर बातें कर रहा है। मैंने कहा न कि तुम्हें वहम हो गया है। आखिर तुम इतना डरते क्यों हो? तुम्हें किसी से दुश्मनी है।

कहानी

वह डरावनी रात

रात के लगभग साढ़े बारह बज चुके थे। मैं कुछ समय पूर्व की नींद में उतरने लगा था कि अचानक दरवाजे को जोरदार धक्का लगा। मेरी हृदय गति बढ़ी गई। कुछ क्षण के लिए मैंने सोचा कि मैं परिवार जनों को जगाऊं किंतु प्रयत्न करने के बाद भी मेरे गले से आवाज न निकल सकी। मुझे श्राप सा लग गया था। बाहर उल्लू की बेहंगम आवाज रात के अंधेर को चीर रही थी। मुझे बाहर किसी के पदचाप सुनाई दिए। मेरा पूरा शरीर पसीने से सराबोर हुआ। कुछ क्षण बाद मेरा डर थोड़ा कम हुआ और मैं सोचने लगा, टेलिफोन सवेरे से ही खराब था। कहीं यह कोई षड्यंत्र तो नहीं? मैं एक मंजिल मकान में रहता था। जिसमें बाहिरी दरवाजा खोले बिना भी सीढ़ी लगा कर प्रवेश किया जा सकता था। मैं धीरे से बिस्तरे से निकला और अंधेरे में दीवार का सहारा लेकर दरवाजा खोजने लगा। उसकी कुंडी को पूरी तरह बन्द करके जब मैं वापस मुड़ा मेरा पांव अचानक छोटू पर पड़ा। उसके मुंह से एक चीख निकली और कमरे में सोये सभी जन जाग गए। हर एक गूंगे की तरह बात करने लगा मैंने धीमे स्वर में कहा, 'बिजली का सुच ऑन मत कीजिए। बाहर कोई भी हो सकता।' कुछ समय पूर्व दरवाजे पर भी धक्का लगा था। कुछ भी हो दरवाजा मत खोलना, छोटू ने रोना शुरू किया, 'म...मी सुसू'। 'मुझे याद ही नहीं आ रहा।' मैंने पॉट कहां रखा है। अंधेरे में इतने बड़े कमरे में मैं कैसे उसको ढूंढूं मेरी पत्नी अपने आप से बड़बड़ाने लगी। मैं सोचने लगा, यदि दरवाजा तोड़ कर कमरे में दाखिल हुए तो मैं अपने आपको कहां छुपाऊं। बेड के नीचे पहले से ही बहुत सारी बस्तुऐं रखी हुई है। स्टील लॉकर में मैं दुबक नहीं सकूंगा, मुझे कमरे में कोई ऐसी जगह नहीं सूझी जहां मैं अपने आपको छुपा सकता। मैंने सोचा कि मैं मुकाबला करूंगा। मेरा गला अब सूख गया था। मेरे बेड के निकट ही छोटी सी टी पाय पर पानी भरा गिलास था जिस तक आसानी से मेरा हाथ पहुंच सकता था किंतु मुझे लगा कि मेरी सोच और शरीर के बीच का सम्बन्ध टूट चुका ळै। मैं सोच सकता था किंतु अपने शरीर को हरकत नहीं कर पा रहा था। शायद यह डर की आखरी सीमा थी। मेरी पत्नी अंधेरे में पॉट को ढूंढने का प्रयत्न कर रही थी और अचानक स्टील लाकर के साथ टकराई। वह चीखी नहीं बल्कि कुछ समय बाद कहने लगी, मेरे माथे से खून बह रहा हैं मगर पॉट को मैंने ढूंढ़ा। उसने छोटू को पेशाब करवाया। मुझे फिर से बाहर किसी के पदचाप सुनाई दिए। अब कुत्ते भी भोंक रहे थे। उल्लू की बदयाई आवाज अब धीमी पड़ चुकी थी किंतु मेरे सोच का घोड़ा अब भी बेनाम रास्तों पर बेहंगम दौड़ रहा था। मेरे सोच के केनवस पर शंकाएं उभर रही थी। हालात खराब होते ही मैंने सभी खिड़कियों में लोहे के ग्रिल लगवाये थे किंतु बाहरी दरवाजा भाई के साथ सांझा होने के कारण ग्रिल के बिना ही रहा था। सच तो यह था कि यह लोहे के ग्रिल भी मेरे डर दूर नहीं कर पा रहे थे। मैं अधिकतर यह भी सोचता था कि यदि किसी ने रात के समय ग्रिल के साथ ही टायम बम लगा दिया तो? आज रात भी मुझे यह विचार दबे पांव आ रहा था। छोटू और उसकी मां अब शायद सो चुके थे। शायद इसलिए क्योंकि उन की तरफ खामोशी थी। कमरे की इस गहरी खामोशी में मैं अपनी हृदय गति पूरी तरह सुन पा रहा था कि जैसे कोई मेरे दिल को अपनी मुट्ठी में भींच रहा हो। आप अभी तक सोए नहीं। बाहर कोई नहीं हैं। आप को वहम हो गया है.... दूसरों की नींद भी हराम कर देते हो। आपने बच्चों को भी डरा दिया है। छोटू नींद में थर्रा रहा है करवट बदलते मेरी पत्नी ने मुझसे कहा। मैंने धीरे से उत्तर दिया, 'तुम चुप नहीं रह सकती। तुम्हें नही मालूम हालात कितने खराब है। दरवाजे पर धक्के की आवाज मैंने स्वयं सुनी। दरवाजे पर आखिर कोई भूत–प्रेत तो धक्का नहीं देता।' मुझे लग रहा है कि कोई बाहर बातें कर रहा है। मैंने कहा न कि तुम्हें वहम हो गया है। आखिर तुम इतना डरते क्यों हो? तुम्हें किसी से दुश्मनी हैं उसने धीरे से कहा। मैंने एक बार फिर सरगोशियों में उत्तर दिया। मैंने कहा न चुप रहो। दुश्मनी तो किसी से नहीं है लेकिन

यहां दोस्त भी कौन है? उनको तो न्यूज चाहिए वे समाचार पत्रों में आने की लिए दूसरों को मारते हैं। तुम्हें ये बातें समझ नहीं आएंगी। खुदा के लिए इस समय चुप हो जाओ।

मुझे फिर अद्‌भुत विचार आने लगे। मैंने जीवन बीमें की आखरी किस्त भरी है या नहीं। पिछली किस्त तो मैंने एक दोस्त से उधार ली थी। मुझे याद आया कि रिस्क कवर मुझे अब भी है। कुछ क्षण के लिए मुझे अजीब खुशी महसूस हुई और मैं बीमे के दुर्घटना–लाभ का हिसाब जोड़ने लगा। मैंने सीचा कि परिवार वालों को कोई अधिक परेशानी नहीं होगी। दो–तीन लाख तो मिलेंगे ही। एक्सग्रेशिया के एक लाख इसके अलावा। बड़े बेटे को एस.आर.ओ. के अंतर्गत सरकारी नौकरी भी मिलेगी। कुछ समय के लिए मुझे लगा कि मरना मेरी अधिकतर समस्याओं का समाधान है। मौत के प्रति मेरी धारणा बदल गई.... एकदम.....। मैं सोचने लगा कि मासिक वेतन से तो बढ़ती आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पाती। 14 वीं तारीख से ही कर्जदारों की सूचियां बनानी पड़ती हैं और वेतन लेते समय तक इनमें अनेक बार परिवर्तन करने पड़ते हैं। छोटू पिछले एक सप्ताह से दवाई नहीं ले पा रहा है। उसको अब अधिक दर्द रहने लगा है। मेरे मन में एक निराली इच्छा उत्पन्न हुई। जही हां! मरने की इच्छा मेरा डर एकदम खत्म हुआ। मुझमें साहस की शक्ति उत्पन्न हुई। बाहर अब सुबह की रोशनी अंधेरे को पराजित कर रही थी। मैंने पडोसियों के दरवाजा खोलने की आवाज सुनी। साहस करके मैंने दरवाजा खोला और बाहर निकला। बाहर निकलते ही मैं चकित रह गया। बाहर दरवाजे के एक तरफ कुत्ता सोया पड़ा था। और उसके निकट ही चमड़े का फटा हुआ जूता था जिसकी दशा कुत्ते से रातभर दबा–चबाकर खराब कर दी थी। ✠

पृष्ठ 21 से आगे.....

"पहले तीसरा भी था।"

"तीसरा कौन?" मैंने हैरान होकर पूछा– "पिता तो मेरे पैदा होने के पहले ही।

माँ मुस्कराई–"तुम्हारा पिता पहले भी नहीं था और अब भी नहीं है। मगर वह तीसरा पहले था अब नहीं रहा।"

वह थोड़ी दूर चली गयी और अपने हाथो से रेत खोद–खोदकर गड्ढा बनाने लगी। जिन हाथो ने कच्ची ईटें जोड़–जोड़कर और उन पर चिकनी मिट्टी थोप–थोपकर दुमंजिला घर खड़ा किया था, उनके लिए रेत निकाल–निकालकर दो हाथ गहरा गड्ढा खोदना क्या मुश्किल था।

गड्ढा बन गया। माँ उसमें उतर गयी। मैंने सोचा गड्ढे के अन्दर की रेत बाहर की रेत की तरह बेसबब बैर नहीं ठानेगी। मगर रेत–रेत होती है। गर्म हो चाहे सर्द, दानों सूरतो में बेलाग और बेदर्द होती है। पैरों को जकड़ने के बावजूद उंगलियों या पोरों से बिल्कुल नहीं चिपकती है। मुझे अचानक बर्फ याद आई जो पहले ही स्पर्श में कपड़ों को ही नहीं जिस्म को भी भिगो देती है। तन–मन को सराबोर कर देती है। मुझे याद आया जब जाड़े भर आकाश और छत के गिरी, और गिरकर आंगन के एक कोने में जमी बर्फ बसन्त आने पर दूर से सूरज का मुख देखती थी तो तुरन्त पिघल जाती थी और हमारे छोटे–संकरे आंगन में ही शतशत जल धाराएं, द्वीप और दुआवे, सरोवर और संगम अवतरित होते थे।

मैंने मुंह दूसरी ओर करके आंखें पोंछ ली। मैं नहीं चाहता था कि माँ मेरा यह रूप देख ले। लेकिन वह क्या देखती? वह गहरी नींद में पड़ी थी। मैंने गड्ढ में उतरकर उसकी छाती पर सिर रखा। उसकी कलाई पकड़ी। उसकी न सांस चल रही थी और न ही नब्ज़। उसके चित्त पड़े अचेत शरीर को सिर से पांव तक निहार कर मैं भी उसकी बगल में लेट गया। ✠

पृष्ठ 31 से आगे.....

उनके कृत्तिव की प्रशंसिका होने के नाते उनकी इस उपेक्षा से मुझे तकलीफ होती है। गोकि जानती हूँ मुक्तिबोध और महाप्राण निराला जैसे साहित्य स्तम्भ भी अपने जीवनकाल में लगभग उपेक्षित ही रहे, लेकिन साहित्य के इतिहास में वे भी एक विश्वास सा है कि मजबूर साहब भी अपने रचनात्मक अवदान के कारण कश्मीरी साहित्य में शिखर कवियों में स्थापित हो कर रहेंगे। समय स्वयं उनकी विरासत का मूल्यांकन करेगा।

उनके कास्व–पाठ का ढंग भी सम्मोहित करने वाला था। विस्थापना की पीड़ा को जो कलात्मक अभिव्यक्ति उन्होंने दी थी वह मर्म को छूने वाली थी। हम उनके दुख के सहभागी थे। देर तक उनको सुनते रहे। उनकी कविताओं में कश्मीरी भाषा का लावण्य और भाव संवेदन का घनत्व इतना अभिभूत करने वाला था, कि उन्हें घंटों सुनते रहे पर मन तृप्त नहीं हुआ।

मेरे लिए उनका आत्मीय आशीष, मेरे स्मृति कोश में ज़िन्दा रहेगा। व्यास सम्मान मिलने पर उन्होंने मुझे आर्शीवाद–स्वरूप एक कविता भेजी थी। एक बड़े साहित्कार के उदार व्यक्तिव और प्रेमिल मन से निकले उद्‌गार थे वे, जो मैंने सहेज कर रखे हैं। उनमें कुछ शब्द पाठकों के सामने रखने का लोभ संवर नहीं पा रही: "यस व्यास दॅय गोमूत, तमिस वाणी म्वखस प्यठ, सरस्वती हुँज़ दया छस स्यठाह, चंदन हारस त्‌ शाहकारस मुबारक।"

ऐसे मुक्त मन के साधक मजबूर साहब को भूलना क्य संभव है?? ✠

सभा समाचार

कन्याकुमारी में सम्मेलन का अधिवेशन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का 64वां वार्षिक अधिवेशन कन्याकुमारी तमिलनाडू में सम्पन्न हुआ। हिन्दी–कश्मीरी संगाम की सचिव डॉ. बीना बुदकी ने कश्मीर का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने भक्ति आन्दोलन का पुनरावलोकन संदर्भ कश्मीर विषय पर शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत किया।

शिलांग में अधिवेशन

पूर्वोत्तर हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा शिलांग में अखिल भारतीय सम्मेलन में देश के विभिन्न क्षेत्रों से आमंत्रित हिन्दी सेवियों की उपस्थिति में कश्मीर का प्रतिनिधित्व हिन्दी कश्मीरी संगम की सचिव डॉ. बीना बुदकी ने किया। इस अवसर पर उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करते हुए मातृभाषा कश्मीरी के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए उल्लेखनीय योगदान को सराहा गया।

साहित्य अकादमी अनुवाद कार्यशाला शिमला में सम्पन्न

28 जुलाई 2012 से 13 जुलाई 2012 तक कश्मीरी–हिन्दी कहानी कार्यशालाा का आयोजन हुआ। इसमें कश्मीरी की चुनी हुई कहानियों का अनुवाद हुआ, उनकी भाषा और गुणवत्ता पर चर्चा भी हुई। कार्यशाला में श्रीनगर, जम्मू और दिल्ली से पधारे प्रमुख साहित्यकारों ने भाग लिए। साहित्य आकादमी का प्रतिनिधितव सुश्री गीतांजलि और कश्मीरी सलाहकार समिति के संयोजक डॉ. अजीज हाजिनी ने किया। कार्यशाला में निम्नलिखित कश्मीरी साहित्यकारों ने भाग लिया – सर्वश्री प्रो. चमन लाल सप्रू, विजय साकी, ब्रजनाथ बेताब, प्यारे हताशे, डॉ. गौरी शंकर रैना, डॉ. महाराज कृष्ण भतर, डॉ. बीना बुदकी, रुखसाना जबीना, रिंकू कौल आदि।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा अमृत महोत्सव

पचहत्तर वर्ष पूर्व हिन्दी नगर वर्धा (महाराष्ट्र) में स्थापित उपर्युक्त संस्था का राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में भव्य आयोजन करने हेतु विचार विमर्श के लिए 29 जुलाई 2012 को एक बैठक हुई। दिल्ली के वरिष्ठ हिन्दी कवियों ने इसमें भाग लिया। हिन्दी कश्मीरी संगम के अध्यक्ष प्रो. चमन लाल सप्रू को आयोजन समिति में नामित किया गया।

विश्वमित्र परिवार समारोह

विश्वमित्र परिवार की ओर से आयोजित 7 अगस्त 2012 को दिल्ली में मानवीय मूल्यों पर आधारित वर्तमान युग में विश्व स्तर पर स्थापना पर एक संगोष्ठी का आयोजन हुआ और इस अवसर पर समाज में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा में उल्लेखनीय योगदान के साथ–साथ हिन्दी साहित्य की अभिनन्दनीय सेवा के लिए हिन्दी कश्मीरी संगम की सचिव डॉ. बीना बुदकी को "समाजरत्न सम्मान" से अलंकृत किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि जे.बी.जी. कृष्ण मूर्ति –पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त थे।

प्रो. सप्रू को गंगाशरण सिंह पुरस्कार

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रदत्त विश्व स्तरीय सम्मान 2007 के लिए कश्मीर भाषी हिन्दी सेवी प्रो. चमनलाल सप्रू को दिया गया। 20 जून 2012 को राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति प्रतिभा देवी सिंह पाटिल द्वारा प्रदत्त सम्मान में प्रो. सप्रू को एक लाख रु. नकद, एक शाल और स्मृति चिह्न पर अंकित प्रशस्ति पत्र प्रदान किया। समारोह की अध्यक्षता केन्द्रीय मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने की।

मास्टर जी की जयन्ती

श्रावण कृष्ण पक्ष चतुर्दशी सप्तर्षि संवत 5088 (18 जुलाई 2012) को विख्यात कश्मीरी कवि पंडित ज़िन्द कौल 'मास्टर जी' की जयन्ती मनाई गई। हिन्दी कश्मीरी संगम के अध्यक्ष प्रो. चमन लाल सप्रू ने इस अवसर पर कहां– "मास्टर जी को कश्मीर का टैगोर कह सकते हैं। जो स्थान आधुनिक बंगला साहित्य में गुरुदेव का है वही स्थान मास्टर जी का कश्मीरी साहित्य में है।" कश्मीरी के लिये 1956 में प्रथम साहित्य अकादमी पुरस्कार उनके 'स्मरण' काव्य संग्रह पर दिया गया।

डॉ. बीना बुदकी सचिव हिन्दी कश्मीरी संगम ने प्रणव कौल, विजन क्रिएटिव सर्विसेस, 222, पल्ला पावर हाउस, ओल्ड शेर शाह सूरी रोड़, फरीदाबाद से मुद्रित कर संपादकीय कार्यलय 102-ए. एस. जी. इम्प्रेशन (मेवाड़ कॉलिज के पास), [illegible] किया।